PITRISATTATMAK PARIPREKSHYA MEIN JHUTHA SACH

A Dissertation submitted in Partial Fulfilment of the Requirement for

the Degree of Master of Philosophy in Hindi

Supervisor

PROF. RAVI RANJAN

Researcher

MANISHA ROY

19HHHL12

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad - 500046

Telangana

India 2022

पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में 'झूठा सच'

हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम. फिल (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु-शोधप्रबंध

शोध-निर्देशक

प्रो. रविरंजन

शोधार्थी

मनीषा रॉय

19HHHL12

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद, 500046

तेलंगाना

भारत

2021

DECLARATION

I, **MANISHA ROY** (Registration no. **19HHHL12**) hereby declare that the dissertation entitled **‘PITRISATTATMAK PARIPREKSHYA MEIN ‘JHUTHA SACH’ (पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में ‘झूठा सच’)** submitted by me under the guidance and supervision of Prof. **RAVI RANJAN** is a bona fide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/Inflibnet.

Signature of Student

MANISHA ROY 19HHHL12

CERTIFICATE

This is to certify that the Dissertation entitled **'PITRISATTATMAK PARIPREKSHYA MEIN JHUTHA SACH' (पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में 'झूठा सच')** submitted by **MANISHA ROY** bearing Regd. No. **19HHHL12** in partial fulfilment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bona fide work carried out by him under my supervision and guidance.

As for as I know, This dissertation is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

Prof RAVI RANJAN

Head of the Department **Dean of the School**

Prof GAJENDRA KUMAR PATHAK Prof V. KRISHNA

अनुक्रम **पृष्ठ संख्या**

भूमिका i – iv

प्रथम अध्याय 1 – 27

पितृसत्ता की अवधारणा

1.1 सेक्स और जेंडर

1.2 जेंडर की संरचना

1.3 पुरुषत्व और स्त्रीत्व

1.4 पितृसत्ता

1.5 पितृसत्ता की अवधारणा

1.6 मातृवंशीय

1.7 मातृसत्ता

1.8 पौराणिक कथाओं में मातृसत्ता

द्वितीय अध्याय 28 - 53

यशपाल की वैचारिक पृष्ठभूमि

2.1 रचना प्रक्रिया

2.2 समाज

2.3 व्यक्ति

2.4 स्त्री – पुरुष संबंध

2.5 गांधीवाद संबंधी विचार

2.6 व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक स्वतंत्रता

2.7 प्रजातन्त्र

2.8 मार्क्सवाद संबंधी विचार

2.9 समाजवाद और स्त्री

तृतीय अध्याय 54-94

पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में 'झूठा सच'

3.1 विभाजन के दौरान हुई हिंसा

3.1.1 आँकड़े

3.1.2 स्वरूप

सामूहिक यौन हिंसा

स्त्रियों का क्रय-विक्रय

नग्न शरीर का सामूहिक प्रदर्शन

अमानुषिक अत्याचार

3.2 पितृसत्ता की अभिव्यक्ति के विभिन्न क्षेत्र

3.2.1 धर्म

3.2.2 समाज

3.2.3 परिवार

3.3 पितृसत्ता का वर्गीय आधार

3.4 पितृसत्ता का शैक्षणिक स्तर

3.5 पितृसत्ता द्वारा प्रयुक्त शोषण के तरीके

3.6 पितृसत्ता की भाषिक अभिव्यक्ति

उपसंहार 95- 98

संदर्भ सूची 99 – 103

भूमिका

एक ही समाज में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के एक साथ रहने से मनुष्य के तर्क का विकास होता । भिन्न संस्कृतियों के मध्य जीवन जीने से मनुष्य में समाहार की शक्ति निर्मित होती है । उपनिवेशवाद की शोषण प्रणाली से देश की जनता को जागरूक करने के किए जिस मार्ग को यशपाल ने अपनाया वह जोखिमों से भरा था । युवाकाल में भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, भगवती चरण वोहरा जैसे सशस्त्र क्रांति की राह पर निकले युवकों से मिलकर यशपाल ने देश के प्रति अपनी भूमिका को आकार देना शुरू किया । क्रांतिकारी संगठन में रहते हुए भी प्रारम्भिक दिनों में यशपाल इस ओर ज़्यादा सक्रिय नहीं हो सके मगर बाद में बम बनाने से लेकर वायसराय की गाड़ी के नीचे बम फेंकने जैसे कार्यों ने उन लोगों को चुप्पी साधने पर मजबूर किया जो यशपाल की पार्टी संबंधित ईमानदारी के लिए सशंकित थे ।

यशपाल का लेखन आजीवन कारावास के पश्चात 1938 से शुरू होता है । यशपाल अपने लेखन के साथ-साथ चित्रकारी भी किया करते थे । लेखन और चित्रकारी के मध्य चुनाव के प्रश्न के साथ यशपाल के समक्ष भाषा का भी प्रश्न था । उन्होंने हिंदी भाषा का चुनाव कर अपनी रचनाओं के माध्यम से भारत की रूढ़ मान्यताओं को चुनौती देने का प्रयास किया । यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि यशपाल अपने लेखन के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के पक्ष-विपक्ष पर विचार करते हुए अपनी पक्षधरता को और मजबूत कर रहे थें । देश की विभिन्न समस्याओं के मध्य स्त्री का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न था । दुनिया भर में स्त्री आंदोलन हो रहे थें । मतदान के अधिकार से लेकर स्त्री के लिए वास्तविक आज़ादी क्या हो सकती है और क्या होनी चाहिए जैसे प्रश्न से सभी संवेदनशील रचनाकार अपनी-अपनी तरह से जूझ रहे थें । रूस में समाजवादी क्रांति के पश्चात स्त्री एवं पुरुष के संबंध पर कई आयामों से विचार-विमर्श किया गया । लेनिन ने जर्मनी का संदर्भ देते हुए बताया वहाँ सेक्स और विवाह को मुख्य सामाजिक समस्या के एक अंग के तौर पर नहीं देखा गया इसके विपरीत मुख्य सामाजिक समस्या को सेक्स समस्या के एक हिस्से, एक उपांग के तौर पर देखा गया जिससे मुख्य मुद्दा कहीं पीछे छूट गया अर्थात सामाजिक समस्या के

अंतर्गत ही सेक्स और विवाह जैसी समस्या को देखा जाना चाहिए प्रमुख समस्या सामाजिक है। बाद की कई स्त्रीवादी लेखिकाओं की समझ के अनुसार केवल समाजवाद के स्थापित हो जाने से स्त्रियों को समानता मिल जाएगी ऐसा पूरे विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता। स्त्री और पुरुष के मध्य के जैविकीय विभेद के कारण पुरुष चाहे जिस वर्ग का हो उसे यह ज्ञात है कि स्त्री उससे शारीरिक रूप से कमज़ोर है जिसे आसानी से प्रताड़ित अथवा शोषित किया जा सकता है।

परंपरावादी भारतीय समाज में स्त्री की समस्या को रूस के वातावरण के अनुसार नहीं देखा जा सकता। यशपाल ने स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर कई कहानियां, उपन्यास व वैचारिक निबंध लिखें है। स्त्री की समस्या पर विचार करते हुए उन समस्याओं को आकार देने वाली व्यवस्था का मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। यशपाल के क्रांतिकारी विचारों व मार्क्सवाद की वैचारिक पद्धति को पोषित करने वाले दृष्टिकोण पर कई शोध हुए हैं। उनके स्त्री पात्रों पर भी कई शोध कार्य हुए हैं लेकिन समाज में स्त्रियों की हीन व शोषित स्थिति के लिए जिम्मेदार पितृसत्तात्मक शोषण प्रणाली का मूल्यांकन 'झूठा सच' के संदर्भ में एक नया कार्य होगा। इस कार्य के चुनाव का मुख्य कारण स्त्री अध्ययन में मेरी अपनी रुचि है। इसी के साथ समाज में घटित होने वाली घटनाओं के यथार्थ को शब्द देना एक शिक्षित नागरिक की जिम्मेदारी होती है।

पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में 'झूठा सच' उपन्यास पर किए अपने शोध को अध्ययन की सरलता के लिए तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय पूर्णतः पितृसत्ता के सैद्धांतिक पक्ष की विवेचना पर आधारित है। इस अध्याय में सेक्स व जेंडर के अंतर को स्पष्ट करते हुए जेंडर के सामाजीकरण व इसके मनोवैज्ञानिक पहलू पर विचार किया गया है। पितृसत्ता की अवधारणा, इसकी उत्पत्ति के सिद्धांत व भारत में पायी जाने वाली मातृवंशीय समुदायों के विषय में चर्चा की गयी है। मातृसत्तात्मक अवधारणा के मिथकीय पक्ष व पौराणिक कथाओं में मातृसत्ता के साक्ष्य पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय यशपाल की वैचारिकी पर केंद्रित है । समाज, व्यक्ति, स्त्री, पुरुष व उनके संबंध को लेकर यशपाल की मान्यताओं को स्पष्ट किया गया है । रचना प्रक्रिया, गांधीवाद व मार्क्सवाद को लेकर यशपाल की मान्यताओं पर विचार किया गया है तथा समाजवाद में स्त्री की स्थिति को लेकर उनके क्या विचार थे इसे भी प्रस्तुत अध्याय में स्पष्ट किया गया है ।

'झूठा सच' जो विभाजन की पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया वृहदकाय उपन्यास है । प्रस्तुत शोध प्रबंध का तीसरा अध्याय जो इसका मुख्य अध्याय है 'पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में झूठा सच' में उपन्यास के माध्यम से विभाजन के दौरान स्त्रियों पर हुई दैहिक हिंसा के आकड़े व उनके विभिन्न स्वरूपों की चर्चा है । तत्पश्चात पितृसत्ता को पोषित करने वाले विभिन्न क्षेत्र जैसे परिवार, समाज, धर्म आदि का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है । इसके बाद पितृसत्ता के विभिन्न आधारों की चर्चा उपन्यास मे उपस्थित घटनाओं के माध्यम से की गयी है । आधुनिक पितृसत्ता के द्वारा किस प्रकार स्त्रियों की उत्पादन क्षमता को सीमित किया जाता है उसकी भी चर्चा है । पितृसत्ता की भाषिक संरचना पर बात करते हुए समाज में स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होने वाली गालियों व उनके शारीरिक अंगों को लेकर पुरुषों के मध्य प्रचलित भद्दे मज़ाक का भी यहाँ जिक्र किया गया है तथा यशपाल में उपस्थित मेल गेज़िंग को भी उदाहरण के माध्यम से रखने का प्रयास किया गया है ।

इस शोध कार्य को पूरा करने में मेरे शोध-निर्देशक प्रोफेसर रविरंजन सर को मैं दिल से आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिन्होंने मुझे मुक्त रख कर मेरा मार्ग निर्देशन किया । किसी भी प्रकार के दबाव के अभाव से यह कार्य मुझे कभी थकान नहीं दे सका और उनके मार्ग दर्शन मे मैं इसे पूरा कर सकी । मेरी वैचारिकी के निर्माण में वंदना मैडम का बहुत योगदान रहा है । स्त्री और पुरुष के संबंध को लेकर कई जिज्ञासाओं के विषय में मैं उनसे उन्मुक्त होकर बात कर सकती सकी । उनको भी मैं हृदय से शुक्रिया करना चाहूँगी ।

यशपाल के पुत्र आनंद यशपाल जी का मैं दिल से आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपना कीमती वक्त मुझे दिया और मेरी जिज्ञासाओं से अन्य जिज्ञासाओं को उत्पन्न किया । उनसे मुझे यशपाल के संबंध में कई जानकारियाँ प्राप्त हुई ।

मेरे स्वर्गीय माता-पिता को याद करते हुए मुझे सदैव जीवन का जुड़ाव ही महसूस हुआ है। विशेषकर मेरी माता के संघर्ष से मुझे शक्ति मिलती है। मेरे भाई-बहन को भी दिल से आभार जिन्होंने मुझ पर कभी किसी भी प्रकार की पाबंदियाँ नहीं रखी। मेरे बड़े पिताजी का मुझे यहाँ तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान है जिसको मैं केवल धन्यवाद से पूरा नहीं कर सकती। इसके साथ ही मानसिक तनाव के दौर में मुझे जीवन की ओर खींचने वाले मेरे मित्र दीपक का बहुत-बहुत आभार। इसके साथ ही उन सभी का धन्यवाद जिन्होंने मुझपर भरोसा किया और मेरी हमेशा मदद की।

मनीषा रॉय

प्रथम अध्याय
पितृसत्ता की अवधारणा

पितृसत्ता की अवधारणा

समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार है। परिवार एक ऐसी व्यवस्था है जो मनुष्य को मनुष्य बनने की सभी मूलभूत आवश्यकताएं प्रदान करता है। परिवार के सदस्यों के मध्य एक गहरा भावनात्मक संबंध पाया जाता है। भाषा से लेकर जीवन के गहरे अनुभव मनुष्य अपने समाज एवं परिवार से ही प्राप्त करता है। परिवार के दुखद अनुभव मनुष्य की मानसिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

समाजशास्त्रियों ने परिवार को कई आधारों पर वर्गीकृत किया है। सदस्यों की संख्या के आधार पर इसे एकल और संयुक्त परिवार प्रणाली में विभक्त किया गया है। निवास स्थान के अनुसार पितृस्थानीय मातृस्थानीय परिवार, नवस्थानीय परिवार, मातृ/पितृ स्थानीय परिवार, द्विस्थानीय परिवार आदि प्रकारों में विभक्त है। एक परिवार के अंतर्गत निर्णय के अधिकार व प्रभुत्व के आधार पर समाजशास्त्रियों ने परिवार को दो श्रेणियों में विभक्त किया है। पितृसत्तात्मक परिवार व मातृसत्तात्मक परिवार। भारत में अधिकांश परिवार पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था के स्वरूप को अपनाये हुए हैं। मानव वैज्ञानिकों में मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को लेकर मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकों का यह मानना है कि इतिहास में ऐसी परिवार व्यवस्था उपस्थित थी जहां निर्णय व शासन का अधिकार स्त्रियों के पास था। स्त्रियां परिवार व अपने समुदाय की प्रमुख मानी जाती थी और शासन की शक्तियां स्त्रियों के पास थी। यह मान्यता प्रस्तुत करने वाले पहले व्यक्ति जोहान जैकब बैचोफैन है। वहीं वैज्ञानिकों के दूसरे वर्ग का यह मानना है कि इतिहास में मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था जैसी कोई व्यवस्था रही ही नहीं है यह केवल एक परिकल्पना है।

स्त्री व पुरुष के संबंध से उत्पन्न संतान या तो अपने पिता के वंश से पहचानी जाती है अथवा अपनी माता के वंश से। इस आधार पर परिवार को दो वर्गों में विभक्त किया गया है; पितृवंशीय व   मातृवंशीय। भारत में अधिकांश परिवार व्यवस्था पितृवंशीय प्रणाली का

अनुगमन करती है। लेकिन उत्तर-पूर्वी व दक्षिणी राज्यों में ऐसे कई समुदाय पाए जाते हैं जो मातृवंशीय प्रणाली के आधार पर अपनी वंशावली रेखांकित करते हैं जैसे खासी समुदाय, गारो समुदाय, दक्षिण के नायर समुदाय आदि।

पूर्वजों की संचित संपत्ति के उत्तराधिकार के आधार पर परिवार को जिन दो वर्गों में विभक्त किया गया है वह मातृपक्षीय व पितृपक्षीय परिवार व्यवस्था है। परिवार में मातृपक्षीय उत्तराधिकार की व्यवस्था होने पर भी संपत्ति का वास्तविक स्वामी पुरुष ही होता है।

निम्न आरेख के माध्यम से परिवार के वर्गीकरण के आधार को सरलता से समझा जा सकता है –

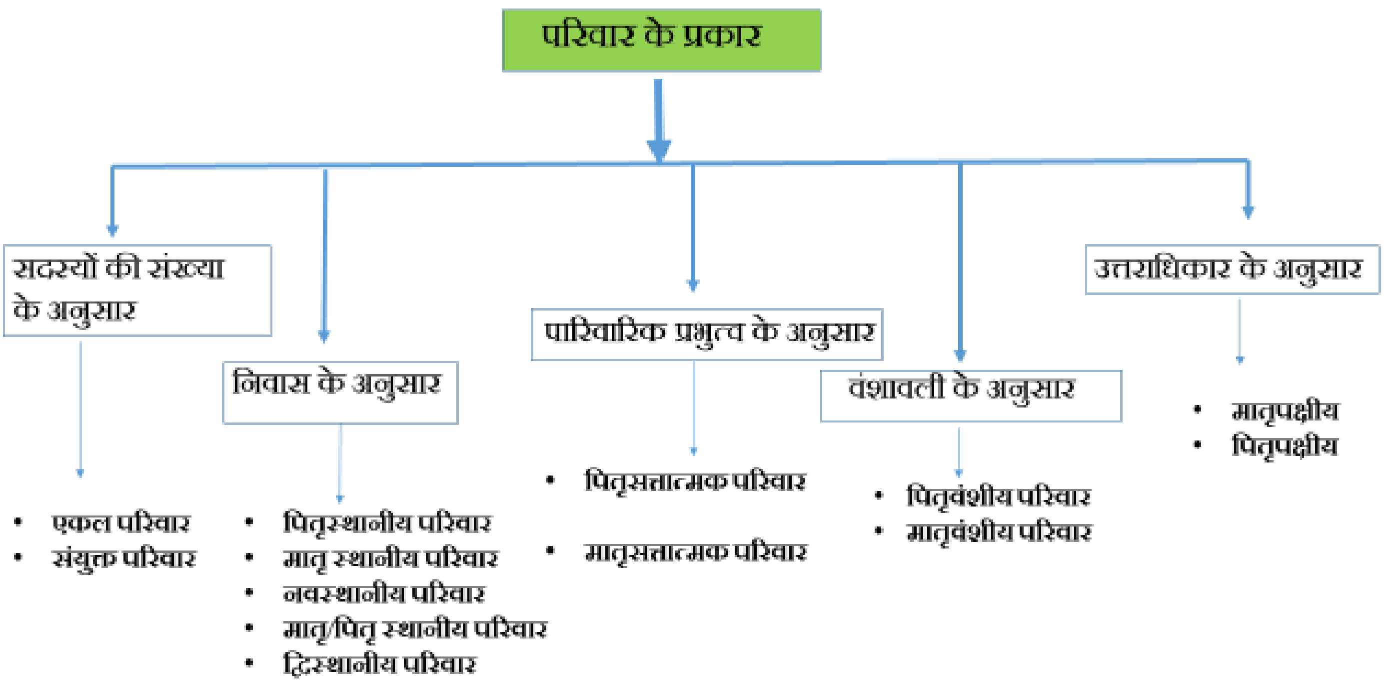

कई विचारकों ने स्त्री की समस्या पर विचार करते हुए दलितों की समस्याओं से इसे जोड़ कर देखा है। मार्क्सवाद ने भी स्त्री की समस्या को मजदूरों की समस्याओं के अंतर्गत रखा व स्त्री की आज़ादी को मज़दूर वर्ग की आज़ादी से जोड़ कर देखा। लेकिन यह केवल एक ही पक्ष पर विचार है। मार्क्सवाद में मज़दूर की समस्याओं को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है और स्त्री की समस्या को इसी के अंतर्गत देखा गया है।

स्त्री की समस्या दलित व मज़दूर की समस्या से कई स्तरों पर भिन्न है। दलित व मज़दूर एक संगठन के रूप मे स्वयं को परिभाषित कर सकते है। उनके सामने उनके अधिकारों को न देने वाला एक शत्रु पक्ष है जिसका वे खुल कर विरोध कर सकते हैं। उनके इस विरोध में केवल उनका समाज ही नहीं उनका परिवार भी उनका सहयोगी है लेकिन स्त्रियों के साथ स्थिति ऐसी नहीं है। वे भिन्न-भिन्न आर्थिक वर्ग व जाति में बटी हैं। वे अपने शत्रु पक्ष के खिलाफ खुलकर विरोध नहीं कर सकती जिसमें उसे पारिवारिक सहयोग मिलने की भी कोई आशा नहीं रहती। उन्हें समाज की व्यवस्था के साथ-साथ अपने परिवार में भी विरोध का सामना करना पड़ता है। समान स्त्रीत्व के धरातल पर वें अपना संगठन बना भी ले तो भी विरोध लम्बे समय तक कायम नहीं रह सकता। पुरुष मोर्चे में स्वतंत्र होता है। उसका परिवार उसे सभी जिम्मेदारियों से मुक्त रख उसके संघर्ष में साथ रहता है। लेकिन स्त्रियों के लिए परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। उसे अपने इस कदम के लिए घर व समाज दोनों की बेदखली के लिए तैयार रहना पड़ता है।

स्त्री के संग इस प्रकार के व्यवहार के लिए कई कारण जिम्मेदार है। इन कारणों को गहराई से समझने के लिए समाज की व्यवस्था को समझना आवश्यक है। समाज में क्रांति से पूर्व जिस प्रकार मनुष्य के विचारों में क्रांति आती है वैसे ही नई व्यवस्था के समाज में ठोस रूप लेने से पूर्व उसका मानसिक रूप निर्मित होता है। प्रस्तुत शोध में सामाजिक व्यवस्था के माध्यम से मनुष्य की पितृसत्तात्मक मानसिकता का अध्ययन किया जाना है। जिसका पोषण स्त्री व पुरुष दोनों के द्वारा किया जाता है। वैचारिक संघर्ष में किसी विशेष व्यक्ति पर आक्षेप की अपेक्षा व्यवस्था की आलोचना की जानी चाहिए क्योंकि मानसिकता अपने ठोस रूप में

व्यवस्था में दिखाई देती है। उसी की आलोचना के द्वारा एक समतावादी समाज व्यवस्था की परिकल्पना की जा सकती है। 'सिमोन' का कहना है कि स्त्री कहीं झुंड बना कर नहीं रहती। वह पूरी मानवता का आधा हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं है। गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है और एक काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों, अलग अलग वर्गों एवं भिन्न भिन्न जातियों में बिखरी हुई है। उसमें क्रांति की चेतना नहीं, क्योंकि अपनी स्थिति के लिए वह स्वयं ज़िम्मेदार है। वह पुरुष की सह अपराधिनी है। अतः समाजवाद की स्थापना मात्र से स्त्री मुक्त नहीं हो जाएगी। समाजवाद भी पुरुष की सर्वोपरिता की ही विजय बन जाएगा।

1.1 सेक्स और जेंडर

सेक्स और जेंडर कई बार एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं। लेकिन ये दोनों ही शब्द एक दूसरे से भिन्न है। मनुष्य के शरीर में पाए जाने वाले हार्मोन्स उसके सेक्स को निर्धारित करते हैं जबकि जेंडर का निर्धारण समाज द्वारा किया जाता है। जेंडर का अपना सामाजिक व सांस्कृतिक धरातल है। सेक्स एक भौतिक सत्य है तथा जेंडर का अस्तित्व मानसिक होता है। स्त्री और पुरुष के मध्य जो सर्व सामान्य शारीरिक भिन्नताएं पाई जाती हैं उसे विज्ञान की भाषा में सेक्स कहा गया है। किसी विशेष ऐतिहासिक व सामाजिक परिस्थितियों में स्त्री व पुरुष बनने की सामाजिक विशेषताएं जेंडर के निर्माण के लिए उत्तरदायी है। नारीवादी 'अन्न ओकले' के अनुसार जेंडर एक सांस्कृतिक मुद्दा है। जिसका तात्पर्य स्त्री और पुरुष के सामाजिक वर्गीकरण, मर्द और औरत से है।[1]

[1] "Gender is a matter of culture, it refers to that social classification of men and women into 'masculine' and feminine' " ~Ann Oakley(feminist scholar)

1.2 जेंडर की संरचना

जेंडर की संरचना पर विचार करने के लिए उसके सामाजीकरण की प्रक्रिया पर विचार करना अनिवार्य है। जेंडर के सामाजीकरण का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें स्त्री और पुरुष अपने समाज एवं संस्कृति के अनुरूप उन क्रियाओं व व्यवहारों को आत्मसात करते हैं जो उनके सामाजिक लिंग 'औरत व मर्द' बनने का आधार है। बाल्यावस्था से ही मनुष्य समाज द्वारा सामाजिक लिंग के लिए निर्धारित क्रियाकलापों को समझना और अपनाना शुरू कर देता है। कॉलबर्ग के अनुसार बच्चे अपनी बौद्धिक क्षमता और बढ़ती उम्र की योग्यता के अनुसार संसार को श्रेणियों में समझने का प्रयास करते हैं और उनके द्वारा समझी जाने वाली एक श्रेणी सामाजिक लिंग भी है। इस संबंध में कॉलबर्ग आगे कहते हैं कि दो से पाँच वर्ष की अवस्था के मध्य बच्चे यह समझना शुरू करते हैं कि लोग अपने लिंग से पहचाने जाते हैं। वे यह भी समझना प्रारंभ करते हैं कि कोई एक व्यक्ति केवल एक ही लिंग के अंतर्गत हो सकता है जिसे वह कभी बदल नहीं सकता। बच्चों की मानसिक संरचना उन्हें अपने लिंग के लिए निर्धारित हाव-भाव को अपनाने के लिए तैयार करती है।

अतः मनुष्य आरंभिक अवस्था से ही अपने लिंग के प्रति सजग हो जाता है। धीरे-धीरे समाज के द्वारा निश्चित किये गये व्यवहार, भावनाएं, गुण, कर्तव्य आदि उसके अवचेतन के भाग बन जाते हैं। वह अपनी निर्धारित भूमिकाओं में इस कदर जकड़ा होता है कि इन दो श्रेणियों 'औरत व मर्द' के अलावा किसी अन्य जैविकीय लिंग के प्रति उसमें असहजता का भाव उत्पन्न होता है। समाज में सामाजिक लिंग के अंतर्गत भी उच्च व निम्न दो श्रेणियाँ बनी हुई है। जिसमें स्त्री निम्न श्रेणी के अंतर्गत आती है।

सामाजिक लिंग का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है और उसे ठोस रूप देने के लिए किसी विशेष अनुष्ठान की आवश्यकता भी नहीं होती। दिन-प्रतिदिन के आम व्यवहारों का इसे ठोस रूप देने में विशेष योगदान है।

जेन्डर के सामाजीकरण की प्रक्रिया को मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास सर्वप्रथम 1970 के उपरांत 'नैन्सी कॉड्रॉ' के द्वारा किया गया। नैन्सी कॉड्रॉ ने बताया कि जेंडर की पहचान के विकास में माँ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में बच्चे का पालन-पोषण माँ द्वारा ही किया जाता है। बच्चे पिता की अपेक्षा माँ के साथ अधिक समय व्यतीत करते हैं इस कारण वे माँ के अंदर पाये जाने वाले फेमिनीन गुणों से सबसे पहले परिचित होते हैं।

1.3 पुरुषत्व और स्त्रीत्व (मैसकुलिनिटी और फैमिनिटी)

प्रत्येक समाज में स्त्री और पुरुष की भिन्न-भिन्न व्यवहार प्रणालियां होती है। केवल व्यवहार प्रणालियों के द्वारा ही नहीं अपितु स्त्री और पुरुष के मध्य अलगाव उनके गुणों, स्वभाव प्रणालियों, भूमिकाओं, जिम्मेदारियों, अधिकारों के स्तरों पर भी देखा जा सकता है। इन पूर्व निश्चित व्यवहार प्रणालियों के अनुगमन के लिए समाज स्त्री को औरत और पुरुष को मर्द में बदलने का व्यवस्थित प्रयास करता है। जैविकीय लिंग जिसका ठोस भौतिक अस्तित्व होता है, से भिन्न सामाजिक लिंग का मनोवैज्ञानिक आधार है जो ऐतिहासिक व सांस्कृतिक घटकों से निर्धारित होता है।

एक विशेष समाज के लोग अपने समाज के अंतर्गत स्त्री और पुरुष के लिए भिन्न-भिन्न भूमिकाओं का निर्धारण करते है। यह भूमिकाएं संसार के विभिन्न समाजों में अपनी क्षेत्रीयता के साथ उपस्थित है। इसके अलावा कुछ विशेष लक्षण व स्वभाव की प्रणाली स्त्री और पुरुष के लिए निश्चित की गई है जो विश्व में सभी जगह एक समान है। इस प्रकार की व्यवहार प्रणालियों के द्वारा ही समाज वैज्ञानिक मैसकुलिनिटी और फैमिनिटी की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं।

मैसकुलिनिटी और फैमिनिटी का तात्पर्य स्त्री व पुरुष से संबंधित सामाजिक व सांस्कृतिक लक्षणों से है। मनुष्य के व्यवहार के कुछ यांत्रिक लक्षण जैसे आक्रामकता, भावनाओं का दमन, स्वतंत्र विचार, प्रतिद्वंद्विता, सर्वोच्च बौद्धिकता आदि को मैसकूलीन समझा जाता है। इन

लक्षणों का एक पुरुष में पाया जाना समाज के लिए अनिवार्य है। इन मैसकूलीन विशेषताओं को धारण करने से ही पुरुष की मैसकुलिनिटी परिलक्षित होती है अर्थात मैसकुलिनिटी कुछ विशेषताओं का समुच्चय है जिसे हिंदी में मर्दानगी कहा जा सकता है। इस तरह मैसकुलिनिटी का अर्थ मर्द होने का भाव है जबकि कमज़ोर होना, भावुक होना, पराश्रित होना, सहयोग, परवाह करना आदि भावबोधक विशेषताएं फैमिनीन लक्षण माने जाते हैं।[2]

समाज विचारक भोगले के अनुसार लड़कों में लक्ष्य के प्रति आग्रही होना, उपलब्धि केन्द्रित होना और स्वतंत्र स्वभाव आदि उसकी उन्नति के लिए अनिवार्य माने गये हैं। भोगले आगे लिखते है अधिकतर समाज में मैसकूलीन लक्षण को फैमिनीन लक्षणों से श्रेष्ठ माना जाता है।

स्वभावगत विशेषताओं के समुच्चय और सांस्कृतिक छवि के साथ ही कुछ शारीरिक विशेषताएं भी ऐसी निर्धारित की गई है जो समाज की जेंडर संबंधित रूढ़िबद्धता को पोषित करती है। जैसे लड़कों का लंबे कद का होना, मजबूत और स्वस्थ होना तथा लड़कियों का कोमल और थुलथुला होना, पैरों का आकार छोटा और मुलायम होना, लंबे केश, शरीर में रोमों का अभाव आदि।

स्त्री और पुरुष के कार्य व भूमिकाएं भी पूर्व निर्धारित होती हैं। परंपरागत समाज में एक समूह का नेता सदैव पुरुष का होना अनिवार्य है जबकि स्त्रियों को घर के कामों से जोड़ कर देखा जाता है। घर के तमाम कार्य जो स्त्रियां करती हैं उसे अनुत्पादक श्रम की श्रेणी में रखा गया है जिसका सामाजिक महत्व न के बराबर है। स्त्रियों के ये कार्य कर्तव्य की श्रेणी में आते हैं जिसे इसे पूरे विश्व में व्यापकता से अपनाया गया है।

1.4 पितृसत्ता

पितृसत्ता (patriarchy) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा से हुई है। 'पेटर' (जो पैट्रिस से उत्पन्न है) का अर्थ पिता तथा 'आर्च' का अर्थ शासन से है। पितृसत्ता शब्द का शाब्दिक अर्थ पिता या परिवार के प्रमुख पुरुष के शासन से है जिसके अंतर्गत प्रत्येक पुरुष प्रबल व शासक की अवस्था में तथा प्रत्येक स्त्री अधीनस्थ अवस्था में होती है। पितृसत्ता सामाजिक संबंधों की एक प्रणाली है जिसमें स्त्रियों की अधीनस्थ अवस्था का लाभ सबसे ज्यादा पुरुषों को मिलता है। सामाजिक संरचना व अभ्यास की वह प्रणाली जिसमे पुरुष स्त्रियों को अधीन अवस्था में रखते हैं और उनका शोषण करते हैं।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार पितृसत्ता उस व्यवस्था, समाज अथवा देश को कहते हैं जो पुरुषों के नियंत्रण में होता है अथवा उसके द्वारा संचालित होता है।[3] इस परिभाषा के अनुसार 'पैट्रियार्की' शब्द एक संज्ञा है।

कॉलिन्स इंग्लिश शब्दकोश में 'पितृसत्ता' शब्द को गणनीय और अगणनीय संज्ञा में विभक्त कर परिभाषित किया गया है। अगणनीय संज्ञा के अंतर्गत पितृसत्ता एक व्यवस्था है, जिसमें समाज अथवा समूह की सभी या अधिकांश शक्ति व महत्व पुरुषों को प्राप्त होते हैं। गणनीय संज्ञा के अंतर्गत पितृसत्ता एक पितृसत्तात्मक समाज है।[4]

पितृसत्ता की अवधारणा को लेकर विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। विचारक 'वैबी' पितृसत्ता के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखते है कि सामाजिक संरचनाओं व सामाजिक प्रथाओं की वह प्रणाली जिसमें पुरुष स्त्रियों पर हावी हैं और उनके शोषण के

---

[3] According to oxford dictionary – a society, system or country that is ruled or controlled by men.

[4] According to Collins English Dictionary – Uncountable Noun - Patriarchy is a system in which men have all or most of the power and importance in a society or group. Countable Noun – A patriarchy is a patriarchal society.

लिए जिम्मेदार है ।[5] बेल हूक्स ने अपनी पुस्तक 'Understanding Patriarchy' में पितृसत्ता को एक सामाजिक रोग की संज्ञा देते हुए लिखा है - "हमारे देश में पुरुष शरीर और आत्मा पर हमला करने वाला एकमात्र सबसे खतरनाक सामाजिक रोग है ।"[6]

गर्डा हेडविग लरनर ने 'The Creation of Patriarchy' में पितृसत्ता की अवधारणा को परिभाषित करते हुए कहा है - "पितृसत्ता समाज को व्यवस्थित करने की एक प्रणाली है जो ऐतिहासिक रूप से स्थापित हुई है । इसे ऐतिहासिक प्रक्रिया के द्वारा समाप्त भी किया जा सकता है ।" गर्डा लरनर इसी संबंध में आगे कहती हैं कि सामान्यतः पितृसत्ता का तात्पर्य उस दबाव से है जो परिवार में स्त्रियों और बच्चों पर निरंतर बना रहता है और स्त्रियों पर निरंतर बने रहने वाले इसी दबाव का विस्तार समाज में भी पाया जाता है ।[7] अपने संकीर्ण और परंपरागत अर्थ में पितृसत्ता एक व्यवस्था है जो ऐतिहासिक रूप से ग्रीक और रोमन कानून से आई है जिसके अंतर्गत घर के मुखिया (जो पुरुष होता है) के पास अपने आश्रित स्त्री और पुरुषों पर कानूनी और आर्थिक अधिकार होता है ।[8] पितृसत्ता का यह रूप बहुत पुराना है लेकिन 19 वीं शताब्दी में इसका जो नया रूप सामने आता है वह निरंतर जारी है । समाज की सभी महत्वपूर्ण संस्थाओं की शक्ति

---

[5] "a system of social structures and practices in which men dominate, oppress and exploit women"(Walby, 1990).

[6] "A single most life threatening social disease assaulting the male body and spirit in our nation" Bell Hooks in her book Understanding Patriarchy."

[7] "Dominance over women and children in the family and the extension of male dominance over women in society in general".

[8] "the problem with the word patriarchy, which most feminists use, is that it has a narrow, traditional meaning : the system, historically derived from Greek and Roman law, in which the male head of the household had absolute legal and economic power over his dependent female and male family members...."

पुरुषों के पास रही है और स्त्रियाँ इन शक्तियों की पहुँच से वंचित रहीं है। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि स्त्रियां पूरी तरह से शक्तिहीन अथवा अधिकारों से वंचित रहीं हैं।

सामाजिक कार्यकर्ता व नारीवादी विचारक कमला भसीन ने पितृसत्ता को इस प्रकार स्पष्ट किया है-पितृसत्ता शब्द का शाब्दिक अर्थ पिता अथवा पैट्रीआर्क का शासन है। वास्तविक रूप से जिसका प्रयोग एक विशेष प्रकार की परिवार व्यवस्था के लिए किया जाता है जिसमे पुरुषों का प्रभुत्व पाया जाता है। इसे हिन्दी में पितृसत्ता उर्दू में पिदरशाही तथा बांग्ला में पित्रोतौन्त्रो कहा गया है। आय दिन जिस अधीनता को हम अपने जीवन में महसूस करते हैं उसके रूप भिन्न-भिन्न हो सकते है, परंतु मकसद एक ही होता है।[9]

सामाजिक समस्याओं की गहरी समझ रखने वाले दक्षिण के महान विचारक 'पेरियार' भी अपने समय में स्त्रियों की अधीनस्थ अवस्था के विषय में विचार करते हुए लिखते हैं – "नारियों को अपने आश्रित करने तथा अपने नियंत्रण में रखने के लिए संसार के मनुष्यों ने उसके सतीत्व और प्रेमरूपी गुण की आवश्यकता पर बल दिया है। निर्धन और पतितों का शोषण करने के हेतु इसी प्रकार नैतिकता का आलंबन पकड़ा गया है। सतीत्व, पवित्रता, प्रेम, सत्य, न्याय, नैतिकता ये सब एक ही जननी की संतानें हैं। चतुर और शाकी सम्पन्न पुरुषों के लाभार्थ अपने चलन की रूपरेखानुसार उपर्युक्त बातें तोड़ - मरोड़कर नीची जाति के सम्मुख रखी जाती है। यह स्पष्ट है कि कानून का निर्माता मनुष्य है। अतएव नारियाँ मनुष्यों के

---

[9] "The word patriarchy literally means the rule of father or the patriarch and originally it was used to describe a specific type of male dominated family" it is called pitrasatta in hindi, pidarshahi in urdu and pitratontro in bangla ……..The subordination that we experience at a daily level, regardless of the class we might belong to, takes various forms – discrimination, disregard, insult control exploitation, oppression, violence – within the family, at the place of work, in society. The details may be different, but the theme is the same." ~ Kamla Bhasin

आश्रित बनाई गई हैं।[10] वे आगे और कहते हैं – "जब तक 'पितृसत्तात्मक पुरुषत्व' है तब तक महिलाएं स्वतंत्र नहीं हो सकतीं।"[11]

पश्चिम की नारीवादी विचारक 'केट मिलेट' ने कहा है कि समाज में शक्ति का प्रत्येक क्षेत्र जिसमें पुलिस की बलपूर्ण शक्ति भी निहित है सभी पुरुषों के पास है। चूंकि राजनीति का तात्पर्य शक्ति से है और शक्ति अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती।[12]

अपने वैचारिक निबंध 'न्याय का संघर्ष' में यशपाल लिखते हैं स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे शब्द केवल आदमियों के लिए ही अपना मतलब रखते हैं, और स्त्रियां आदमी नहीं है। न ही कभी थी। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ में स्त्रियों के लिए उपयोग होने में अभी लम्बा संघर्ष बाकी है। समाज में न्याय के विभिन्न रूपों में एक रूप पैसा है। जिसका अभाव स्त्रियों के पास हमेशा से रहा है इसलिए भी स्त्रियां और मजदूर न्याय से दूर रखें गए।

'वर्जीनिया वुल्फ़' ने अपनी प्रसिद्ध कृति अपना एक कमरा' में पितृसत्ता को व्यावहारिक रूप में समझाने का प्रयास किया है। वें लिखती हैं "स्त्रियों की मुक्ति के प्रति पुरुषों के विरोध का इतिहास शायद स्वयं उस मुक्ति की कहानी से अधिक रोचक है।"[13]

इस प्रकार विभिन्न विचारकों ने पितृसत्ता को परिभाषित करने व उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए अपने विचार रखें हैं। उपर्युक्त दी गयी सभी परिभाषाओं में विभिन्न शब्दों के माध्यम से स्त्री की अधीनस्थ स्थिति के कारण के लिए पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था व उसे पोषित करने वाली मानसिकता की आलोचना की गयी है।

---

[10] जाति व्यवस्था और पितृसत्ता, प्रमोद रंजन, पृ. 48

[11] वहीं, पृ. 98

[12] "Every avenue of power within the society, including the coercive force of the police, is entirely in male hands. As the essence of politics is power such realization cannot fail to carry impact"

[13] अपना एक कमरा, अनुवाद मोज़ेज़ माइकेल, पृ. 80

1.5 पितृसत्ता की अवधारणा

वह वंश परंपरा जो पिता से पुत्र फिर पौत्र, प्रपौत्र आदि से चलती है। महाभारत के युद्ध के पश्चात पितृवंशिक उत्तराधिकार को उद्घोषित किया गया हालांकि पितृवंशिकता महाकाव्य की रचना से पहले भी मौजूद थी। महाभारत की मुख्य कथावस्तु ने इस आदर्श को और सुदृढ़ किया। पितृवंशिकता में पुत्र पिता की मृत्यु के पश्चात उनके संसाधनों पर अपना स्वामित्व जमा सकते हैं। अधिकतर राजवंश (600 शताब्दी ई० पू०) पितृवंशिकता प्रणाली का अनुसरण करते थें। पितृवंश में पुत्रियों को अलग तरह से देखा जाता था। पैतृक संसाधनों पर उनका कोई अधिकार नहीं था। अपने गोत्र से बाहर उनका विवाह कर देना ही अपेक्षित माना जाता था । ऊंची प्रतिष्ठा वाले परिवारों की कम उम्र की कन्याओं और स्त्रियों का जीवन बहुत सावधानी से नियमित किया जाता था जिससे उचित समय और उचित व्यक्ति से उनका विवाह किया जा सके।

समाजशास्त्रियों ने पितृसत्ता को पारिवारिक व्यवस्था की एक प्रणाली के रूप में व्याख्यायित किया है। इस प्रकार की परिवार व्यवस्था में पुरुष शासक की भूमिका में होता है और स्त्रियां व बच्चे शासित की अवस्था में। इस व्यवस्था को समर्थन प्रदान करने वाली मानसिकता की ठोस समझ विकसित करने के लिए नारीवादी विचारक कमला भसीन अपनी पुस्तक ‘What is Patriarchy?’ में कुछ बिंदुओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है जिसके माध्यम से यह समझा जा सकता है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियों की किन चीजों को नियंत्रण में रखा जाता है और क्यों ?

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के द्वारा स्त्रियों के परिश्रम व उनकी उत्पादन क्षमता, उनकी प्रजनन क्षमता, यौनिकता, गतिशीलता व संगठन, संपत्ति व आर्थिक संपन्नता को प्राप्त करने के सभी मार्गों को सभी मार्गों को नियंत्रण में रखा। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परिवार, धर्म, कानून व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था और आर्थिक संस्थान, राजनीतिक व्यवस्था और संस्था, संचार, शैक्षणिक संस्थान व ज्ञान प्रणाली सभी पुरुषों के द्वारा नियंत्रित किये जाते हैं। पितृसत्ता अन्य प्रकार के शोषण का भी मूल कारण है जैसे - नस्ल, वर्ग, समलैंगिकों के प्रति भय आदि। पितृसत्ता ने अलग-अलग तरह से दमित वर्ग को हाशिये पर धकेल दिया है। पितृसता केवल स्त्रियों के ही विरुद्ध नहीं है इसका पुरुषों और ट्रांसजेन्डरो पर भी समान प्रभाव पड़ता

है । इस व्यवस्था के तहत पुरुष भी स्वाभाविक रूप से नहीं रह सकते । यदि पुरुष अपनी पत्नी अथवा साथिन से सख्य भाव रखता है तो समाज में उसे मज़ाक का पात्र बना दिया जाता है । उसकी मर्दानगी पर सवाल उठाए जाते हैं और इस तरह से उसके पुरुष अहम को जागृत करने का प्रयास किया जाता है ।

इस व्यवस्था ने स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अलग-अलग भूमिकाएं निश्चित की है । पुरुष की मर्दानगी को उसकी जनन क्षमता से जोड़ कर देखा जाता है । यदि पुरुष जैविकीय कारणों से संतान उत्पन्न करने में अक्षम साबित होता है तो वह समाज में हँसी का पात्र बन जाता है । इन सबका सम्मिलित प्रभाव पुरुष के मनोविज्ञान पर गहरा पड़ता है जिसे वह समाज के समक्ष स्वीकृत भी नहीं कर सकता । अतः यह व्यवस्था सभी के विकास में अवरोध उत्पन्न करती है ।

स्त्री और पुरुष के मध्य पाई जाने वाली भिन्नता को स्वीकारने के बाद पुरुषों को श्रेष्ठ व स्त्रियों को निम्न मान लिया गया है । इस भेद-भाव को स्वाभाविक सिद्ध करने के लिए कई वैज्ञानिकों ने जीवविज्ञान का हवाला दिया । पितृसत्ता की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित है । वैज्ञानिकों के कुछ वर्ग इस व्यवस्था को नैसर्गिक मानते है । जिसमें परिवर्तन या विकास की कोई संभावना नहीं होती । वहीं दूसरा वर्ग इसे ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम सिद्ध करता है तथा ऐतिहासिक प्रक्रिया के द्वारा ही इसके समाप्त हो जाने की परिकल्पना भी प्रस्तुत करता है । इसकी उत्पत्ति से संबंधित जो सिद्धांत प्रस्तुत किये गयें हैं वे निम्न है -

पितृसत्ता की उत्पत्ति का जैविकीय सिद्धांत

मानव विज्ञानी मार्टिन हैरिस ने इस संबंध में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि अधिकांश पुरुष जैविकीय रूप से महिलाओं से शक्तिशाली होते हैं । आदिम समूहों में जीवित रहने के लिए युद्ध अनिवार्य था जिसके परिणामस्वरूप पुरुष योद्धा व स्त्री उसका इनाम बनी । इसके लालच ने पुरुषों को अपनी जान जोखिम में डालने के लिए उकसाया । धीरे-धीरे इस प्रक्रिया से पुरुष को स्त्री पर अधिकार करने की शक्ति मिल गई ।

पितृसत्ता की उत्पत्ति का डार्विनवादी सिद्धांत

सामाजिक जीवविज्ञानी, सामाजिक जीवन की व्याख्या के लिए आनुवांशिकी का प्रयोग करते हैं। सामाजिक जीव विज्ञानियों के अनुसार जेंडर की भूमिका के साथ-साथ पितृसत्ता का उद्भव सामाजिक परिस्थितियों की अपेक्षा मनुष्य की अंतर्निहित जैविकी की देन है। पुरुष प्रबलता की जैविकीय धारणा को व्याख्यायित करते हुए '**गोल्ड बर्ग'** अपनी पुस्तक 'The Inevitability of Patriarchy' में तर्क प्रस्तुत करते हैं कि जैविकीय संरचना के फलस्वरूप पुरुषों का प्रभुत्व सभी जगह है। जन्मजात भिन्नता पुरुष और स्त्री के स्वभाव को आकार देती है। मानव वैज्ञानी प्रमाण यह प्रमाणित करते हैं कि सभी समाज पितृसत्तात्मक है। लंबे अरसे तक चली मातृसत्तात्मक समाज की कहानियाँ मिथकीय है। ईश्वर ने पुरुष को श्रेष्ठतर बनाया है इस धारणा की अस्वीकृति के पश्चात भी पुरुष प्रधान परिवार मानवीय समाज के साथ व्यापक रूप से जुड़ा था।

पितृसत्ता की उत्पत्ति का विकासवादी सामाजिक जीवविज्ञानी सिद्धांत

बैटमैन के तर्कानुसार महिलायें पुरुषों की अपेक्षा अपनी अधिकांश ऊर्जा बच्चे पैदा करने में व्यय करती है। स्त्रियाँ वह संसाधन है जिसे प्राप्त करने के लिए पुरुष आपस में प्रतियोगिता करते हैं। साथी चयन के समय स्त्रियाँ इस बात पर ध्यान देती है कि पुरुष उसके और उसकी संतान के लिए संसाधनों पर अधिकार स्थापित करने में कितना सक्षम है। चयनित होने के दबाव के कारण पुरुषों को प्रतिस्पर्धात्मक रूप अपनाना पड़ता है। निरंतर स्वयं को सक्षम बनाना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है।

आर्थिक सिद्धांत

फेडरिक एंगेल्स ने स्त्रियों पर पुरुषों द्वारा होने वाले शोषण को पहला वर्ग शोषण कहा है।[14]

[14] "…… the first class oppression coincides with that of the female sex by the male" – Frederic Engels (as quoted by Jorden, p. 90)

पितृसत्ता के आर्थिक सिद्धांत के अनुसार जब मानव शिकारी की अवस्था में था तब से पुरुष बाहर के काम करते हैं और स्त्रियाँ घरेलू । फेडरिक एंगल्स ने कहा है कि स्त्रियां हमेशा से पुरुष की संपत्ति मानी जाती रही हैं । नारीवाद के पूंजीवादी दृष्टिकोण के अनुसार औरतें जो सामान्यतः अवैतनिक घरेलू कार्य व बच्चों का पालन पोषण करती हैं; जिनका आर्थिक संसाधनों पर कोई अधिकार नहीं उसे सर्वहारा वर्ग में शामिल किया जाता है । जबकि पुरुष स्वयं को पूंजीपतियों में शामिल करते हैं । नारीवादी विश्लेषण में मार्क्सवाद ने स्वयं को स्पष्ट रूप से विकसित किया है । नारीवाद को मार्क्सवाद ने एक स्पष्ट वैचारिक आधार प्रदान किया है । स्त्रियां लम्बे अरसे से पूंजीवाद की नौकर के रूप में देखी जाती रही हैं और स्त्रियों को आज़ाद करने का दम्भ भरने वाले पूंजीवाद ने उन्हे अन्य तरीकों से शोषित किया है । आजीवन मज़दूर आंदोलनों से जुड़ी रहने वाली मार्क्सवादी क्रांतिकारी महिला रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने स्त्रियों के श्रम के महत्व पर समाज का ध्यान आकर्षित करते हुए अपना ऐतिहासिक वक्तव्य दिया । उन्होंने बताया कि जब महिलाओं के श्रम का हिसाब किया जाएगा तब इतिहास की सबसे बड़ी धोखाधड़ी पकड़ी जाएगी । इस प्रकार मार्क्सवाद स्त्री व पुरुष के मध्य के अंतर को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का पक्षपाति है ।

सांस्कृतिक सिद्धांत

समाजशास्त्री सिन्थिया फुक्स के अनुसार स्त्री और पुरुष के व्यवहार के मध्य भिन्नता केवल सामाजिक कारणों का परिणाम है । विशेषतः सामाजीकरण और सामाजिक नियंत्रण के कारण इस भिन्नता का अस्तित्व है । सिन्थिया फुक्स के अनुसार मानव वैज्ञानी साक्ष्य इतिहास में दोनों लिंगों के मध्य महान समानता प्रदर्शित करते हैं । प्रारम्भिक सभ्यताओं में महिलाएं व पुरुष दोनों ही भोजन संग्रहण, औजार निर्माण व छोटी चीजों का शिकार किया करते थें । शिकार व संग्रहण समूहों में स्त्री और पुरुष की भूमिका के नियम इतने कठोर नहीं थे । इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियां पुरुषों के दबाव में नहीं थी । प्रजनन अथवा शरीर की बनावट में भिन्नता जैविकीय कारणों का परिणाम है ।

नारीवाद के समाजवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत यह मान्यता है कि लिंगों के मध्य असमानता का कारण अर्थव्यवस्था पर पुरुषों का नियंत्रण व पितृसत्ता का अस्तित्व है। समाजवादी नरिवाद का यह तर्क है कि पूंजीवाद व पितृसत्ता के मध्य निर्मित घनिष्ठ संबंध श्रम के लैंगिक विभेद को जन्म देते हैं। [15]

श्रम के लैंगिक विभाजन के तहत ही स्त्रियों की कार्य क्षमता को कुछ विशेष क्षेत्र के अंतर्गत बांध के रख दिया जाता है। उन क्षेत्रों में जैसे स्कूल, स्कूल में भी स्त्रियों को उन कक्षाओं को उपयुक्त माना जाता है जहां बच्चों को देखभाल की आवश्यकता होती है। इसके बाद नर्सिंग का क्षेत्र उनके लिए उपयुक्त माना जाता है जहां मरीजों को भी देखभाल की आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों के कार्य एक निश्चित समयावधि तक ही होते है उसके पश्चात वह अवैतनिक घरेलू कार्य करने के लिए पूरी तरह मुक्त

कार्य परिकल्पना

गर्डा लर्नर ने अपनी पुस्तक 'The Creation of Patriarchy' में जेंडर को केंद्र में रखकर पश्चिमी सभ्यता की उग्र पुनर्संकल्पना की है। पश्चिमी सभ्यता में जेंडर के रूपक की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इसकी खोज करने के लिए गर्डा लर्नर प्राचीन सभ्यताओं की संस्कृतियों तक जाती हैं। गर्डा लर्नर ने ऐतिहासिक, साहित्यिक, मानव वैज्ञानी व कलात्मक साक्ष्यों का प्रयोग कर जेंडर से संबंधित विचारों, प्रतीकों व रूपकों का पश्चिमी सभ्यता में इनका समावेश किस प्रकार किया गया इसकी खोज की हैं। आरंभिक मेसोपोटामिया समाज में प्रभुत्व वर्ग के पुरुषों का स्त्री की यौनिकता पर कठोर नियंत्रण था। कुछ महिलाएं आर्थिक रूप से स्वतंत्र थी, कुछ को प्रतिष्ठा के पद भी मिले थे परंतु उनकी यौनिकता पर नियंत्रण पुरुष का था। यहाँ यह विचारणीय है कि आर्थिक प्रश्न के इतर भी देखने की जरूरत है जो स्त्रियों की यौनिकता को नियंत्रण में रखने का प्रश्न है।

---

[15] " a real mix of the interrelationship between capitalism and patriarchy as expressed through the sexual division of labour" (Eisenstein, 1977)

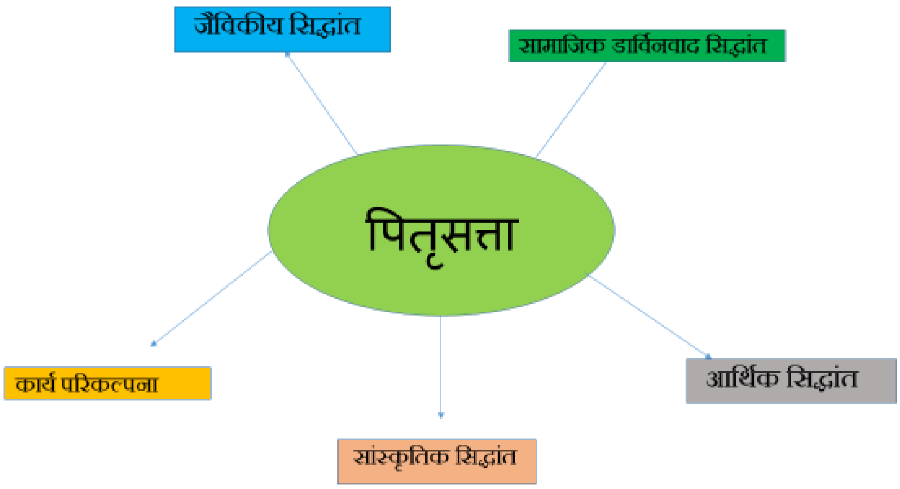

पितृसत्ता पर विचार करते हुए इस महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार करना जरूरी है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था प्रणाली में समय, समाज व परिस्थिति के अनुसार अंतर पाया जाता है। इसके अलग-अलग समाजों, धर्मों, जातियों में भिन्न-भिन्न रूप पाएं जाते हैं। 'सिलविया वैबली' ने आधुनिक पितृसत्ता की समझ के लिए अपनी पुस्तक 'थियोराईज़िंग पैट्रीआर्की' में इसे अध्ययन की सुविधा के लिए निजी पितृसत्ता व सामाजिक पितृसत्ता में विभक्त किया है। परिवार की परिधि में रोज़ स्त्रियां पुरुषों से अपने लैंगिक भिन्नता के कारण जिस शोषण का सामना करती है उसे निजी पितृसत्ता कहा गया है। सामाजिक पितृसत्ता से तात्पर्य उस पितृसत्ता से है जिससे स्त्रियों का सामना घर के बाहर सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवेश में होता है। यह निजी पितृसत्ता का ही विस्तृत रूप है। इसी प्रकार भारत में नारीवादी चिंतकों के मध्य ब्राह्मणवादी पितृसत्ता व दलित पितृसत्ता चर्चा का विषय है। यह भारतीय समाज के अंतर्गत कार्य करने वाली पितृसत्ता का रूप है जिसमें दलित व ब्राह्मण स्त्रियों पर उनके समाज के पुरुषों के द्वारा उन पर नियंत्रण रखा जाता है जिसे निम्नलिखित आरेखों के द्वारा समझा जा सकता है।

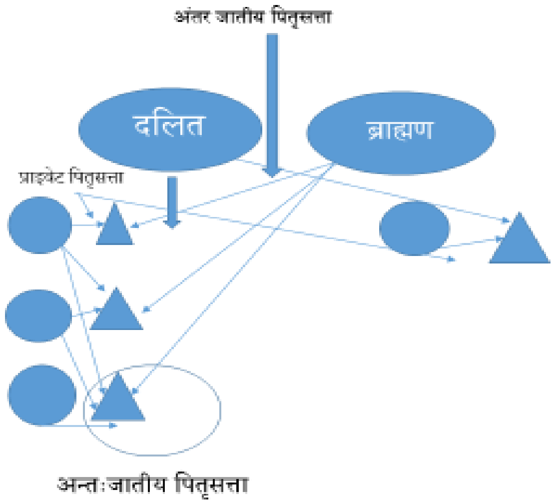

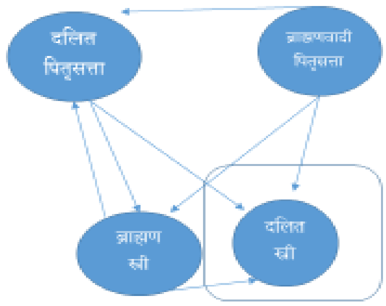

पितृसत्ता के शोषण के इन रूपों में सबसे ज़्यादा सहन उन स्त्रियों को करना पड़ता है जो जाति व्यवस्था के सोपानीकरण में सबसे निचले स्तर पर खड़ी है। उनका शोषण दोहरा व तिहरा होता है।

1.6 मातृवंश

मातृवंशीय शब्द का प्रयोग मानव वैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों के द्वारा ऐसी परिवार व्यवस्था को व्याख्यायित करने के लिए किया जाता है जहां वंश की परंपरा माँ से जुड़ी होती है। संसार के कई देशों के आदिवासी समाजों में मातृवंशीय व्यवस्था पाई जाती है। जिसके अंतर्गत स्त्रियाँ अपनी माताओं से उत्तराधिकार के रूप में उनकी संपत्ति प्राप्त करती हैं। लेकिन यह जरूरी नहीं कि उस संपत्ति पर उसका अधिकार भी हो। संपत्ति के संबंध में निर्णय लेने का मौलिक अधिकार पुरुष के पास होता है। सार्वजनिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को निर्णय लेने की अनुमति नहीं होती। बृहदारण्यक उपनिषद में आचार्यों और शिष्यों की उत्तरोत्तर पीढ़ियों की सूची मिलती है, जिसमें से कई लोगों को उनके मातृनामों से निर्दिष्ट किया जाता है। तथा सातवाहन राजाओं को भी उनके मातृनाम से ही चिन्हित किया जाता था परंतु सिंहासन का उत्तराधिकार पितृवंशिक था।

मातृवंश में माता की भूमिका प्रमुख और पिता की भूमिका केवल संतान के लिंग निर्धारण तक सीमित होती है। संतानों के पालन-पोषण से लेकर शिक्षा की व्यवस्था तक माँ के भाई द्वारा किया जाता है। इस व्यवस्था में मौसी को माँ के समान ही आदर दिया जाता है जबकि पिता के परिवार के सदस्य इस व्यवस्था में रिश्तेदार नहीं माने जाते। वर्तमान में इस व्यवस्था में कई परिवर्तन देखने को मिलते है। शिक्षा के प्रसार व व्यापारिक संबंधों में बदलाव के फलस्वरूप बच्चों के पालन पोषण में पिता की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

भारत में इस व्यवस्था को अपनाने वाले कई समुदाय है जिनमे केरल प्रांत के नायर, कर्नाटक के बंट और बिल्लव, मेघालय के खासी व गारो समुदाय हैं। निम्न सारिणी में भारत के उन समुदायों को दर्शाया गया है जो मातृवंशीय व्यवस्था को अपनाते है।

समूह का नाम	विवाह	वंश
बिल्लव	पितृस्थानीय	**मातृवंशीय**
बंट	पितृस्थानीय	**मातृवंशीय**
एज़ावा	दोनों	**मातृवंशीय**
गारो	मातृस्थानीय	**मातृवंशीय**
खासी	मातृस्थानीय	**मातृवंशीय**
नायर	मातृस्थानीय	**मातृवंशीय**
जैंतिया	मातृस्थानीय	**मातृवंशीय**
मलीकु	अलग-अलग	**मातृवंशीय**

नायर समुदाय

सम्पूर्ण नायर समुदाय मातृवंशीय है जिसका तात्पर्य पुश्तैनी संपत्ति का हस्तानान्तरण माँ से पुत्री को होता है। नायर पुरुष घुमक्कड़ी पद्धति के सरदार थे जिस कारण विवाह के पश्चात एक स्थान पर ठहरकर अपने परिवार का पालन-पोषण करना उनके लिए संभव नहीं था। इसलिए विवाह के स्थान पर केरल के नायर समुदाय एक औपचारिक समझौते को अपनाते थे जिसे **संबंधम** कहा जाता था। इस समझौते के अनुसार स्त्री और पुरुष एक दूसरे का सहयोगी के रूप में चुनाव करते हैं। संबंधम के पश्चात स्त्री अपने पुश्तैनी घर पर ही रहती थी जिसे **थारावाडू** कहा जाता था। पुरुष उसे कभी कभार मिल जाया करता था। इस संबंध से जो संतान उत्पन्न होती थी उसका पालन–पोषण स्त्री के घर पर ही किया जाता था। पुत्र एक निश्चित अवस्था प्राप्त होने पर पुत्र जंग के मैदान में चला जाता था और पुत्री का पालन तब तक होता था जब तक वह अपनी माता की संपत्ति उत्तराधिकार में लेने योग्य न हो जाये।

केरल में मातृवंश की इस व्यवस्था को **मारुमक्काथायम**(Marumakkathayam) कहा जाता है। **मारुमक्कल** का तात्पर्य **भांजा या भांजी** से है। यह सामाजिक व्यवस्था राज परिवारों में भी लागू थी। राजा की पत्नी जिसे **अम्माची** (राजा के बच्चों की माँ) कहा जाता था; को कोई भी आधिकारिक स्थान प्राप्त नहीं था। वह राजा के साथ राजमहल में नहीं रह सकती थी। न ही कभी राजा के साथ उसे बाहर देखा जा सकता था। रानी का स्थान राजा की माँ अथवा बहन को प्राप्त था। राजा की पत्नी अपने बच्चों समेत दूसरे बनाये घर में रहती थी जिसे **अम्मा वीदू** (House of a Mother) कहा जाता था। राजा के पश्चात राजसिंहासन पर उसके भांजे का अधिकार होता था तथा उसकी भांजी अगली रानी बनती थी। पुत्री का जन्म न होने पर अगली रानी बनने के लिए लड़की को गोद भी लिया जा सकता था। रानियों के अपने राजमहल होते थें। इस व्यवस्था ने नायर महिलाओं को आर्थिक रूप से सुरक्षा प्रदान

की थी। वे अपने घुमक्कड़ पति से पूरी तरह स्वतंत्र थी। महिलायें संबंध-विच्छेद के लिए भी आज़ाद थीं। यहाँ तक कि विधवा को पुनः जीवन शुरू करने का अवसर दिया जाता था। परंतु इसका अर्थ यह नहीं लिया जा सकता कि महिलाओं का पूरी व्यवस्था पर अधिकार था। परिवार का सबसे प्रमुख सदस्य पुरुष ही था। माँ का भाई जिसे करनावर कहा जाता था; घर के प्रमुख फैसले उसी के द्वारा लिए जाते थें। 19 वीं शताब्दी में 50% से ज्यादा जनसंख्या केरल की मातृवंशीय थी, न केवल नायर समुदाय बल्कि मुसलमान व ईसाइयों में भी कुछ समुदाय मातृवंशीय थें। सन् 1976 में केरल के विधानमंडल ने विधिवत मातृवंशीय सामाजिक प्रणाली को समाप्त कर दिया। जिसने हिन्दू परिवार की घेरेबंदी को पुनःनिर्मित किया।[16]

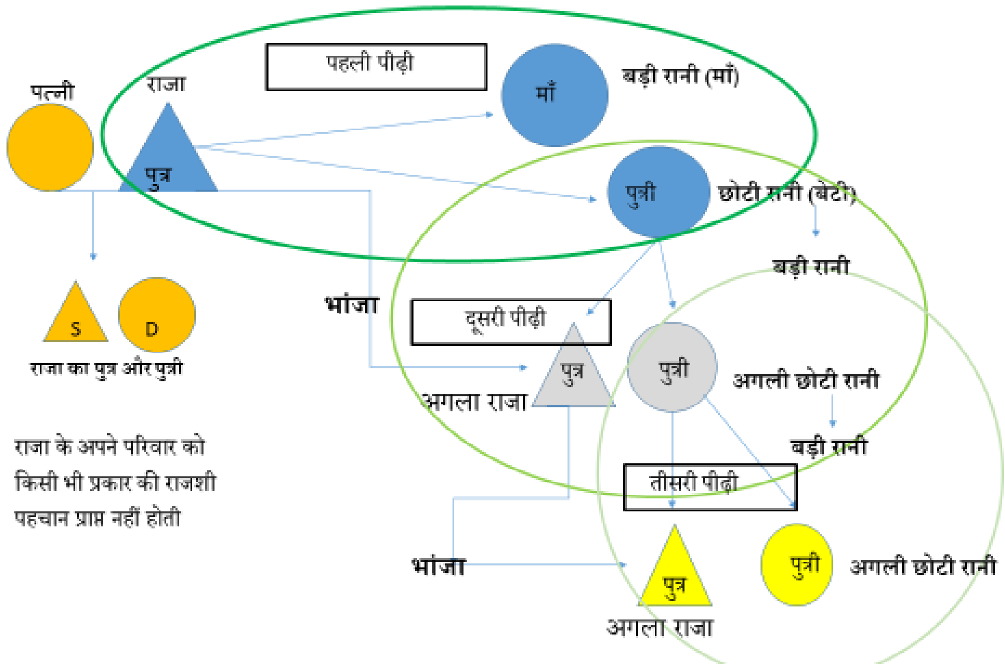

खासी समुदाय

खासी समुदाय एक मातृवंशीय समुदाय है। जहां संतान अपनी माँ के नाम से जानी जाती है। खासी समुदाय में सबसे छोटी बेटी को संपत्ति के संरक्षक के रूप में विशेषाधिकार प्राप्त होता

[16] https://theswaddle.com/podcast/g-arun... G. Arunima, Director Kerala council for Historical Research https://www.youtube.com/watch?v=qt2CA3_sac4

है उसकी मालकिन के रूप में नहीं क्योंकि विरासत में मिली संपत्ति को बेचने व उपयोग करने का अधिकार उसे नहीं दिया जाता। खासी समुदाय में पिता की भूमिका केवल संतान के लिंग निर्धारण तक सीमित होती है। जबकि माँ का सबसे बड़ा भाई सभी मामलों में पिता की भूमिका अदा करता है। अपने भांजा-भांजी का पालन- पोषण व घर के सभी मुख्य फैसले उसी के द्वारा लिए जाते हैं। सबसे छोटी बेटी का पति विवाह के पश्चात अपनी पत्नी के घर आकर रहता है। और उसके माता-पिता की देखभाल करता है। जबकि अन्य बहने अपने-अपने परिवार के साथ समीप में घर बनाकर रहती है।

प्राचीन काल से खासियों द्वारा मातृवंशीय प्रणाली का अभ्यास किया जाता रहा है। वंश महिलाओं के माध्यम से पता लगाया जाता है क्योंकि उनमें यह मान्यता प्रचलित है कि भगवान ने खुद पूर्वजों को खासी जाति का विस्तार करने के लिए बनाया था। दूसरे, खासी पूर्वज को देवत्व का पूरक माना जाता है और प्रार्थनाओं में उनका उल्लेख हमेशा भगवान के बगल में किया जाता है। तीसरा, चूंकि पुरुष अक्सर युद्ध में लगे रहते थे और उनके पास पारिवारिक मामलों को देखने का समय नहीं था इसलिए महिलाओं को वंश और परिवारों के प्रबंधन का अधिकार प्राप्त था। खासी पुरुष जब विवाह में प्रवेश करता है तो हमेशा संतान की तलाश करता है। वह इसे अपने पौरूष का प्रमाण और ईश्वर की ओर से अनुकूल संकेत मानता है।

वसीयत बनाने की प्रथा खासियों में नहीं थी। खासी समुदाय में स्त्री अपने माँ से जायदाद उत्तराधिकार में पाती है और आगे अपनी बेटी को देती है। जबकि एक पुरुष अपनी बहन की जायदाद पर नियंत्रण रखता है। बाद में वह नियंत्रण बहन के बेटे को दिया जाता है। इस तरह संपत्ति का कानूनी उत्तराधिकार तो माँ से बेटी को जाता है पर व्यावहारिक रूप में यह अधिकार मामा से भांजे को प्राप्त होता है। अतः संपत्ति का वास्तविक अधिकारी पुरुष ही रहता है।

मीनंगकाबाऊ समुदाय

इंडोनेशिया के पश्चिमी सुमात्रा में रहने वाला **मीनंगकाबाऊ** समाज अपने अनोखे सामाजिक प्रणाली के साथ विश्व का सबसे विस्तृत मातृवंशीय समाज है। पूर्वजों की संपत्ति जैसे चावल, अनाज और घोड़े आदि पुत्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। संतान अपनी माँ का नाम ग्रहण करती है और पुरुष (बच्चों का पिता) अपनी पत्नी के घर में मेहमान समझा जाता है। इस्लामिक सभ्यता में विवाह के पश्चात स्त्री अपने पति के पैतृक आवास में रहने के लिए जाती है। मगर इस्लाम स्वीकृत करने के बावजूद मीनंग्स दूल्हा विवाह के बाद अपनी पत्नी के घर उसके परिवार के साथ रहता है।

1.7 मातृसत्ता

मातृसत्ता को अंग्रेजी में मैट्रीआर्की कहा जाता है। जो ग्रीक शब्द मैटर (मदर) और आर्केन archein (टू रूल) से बना है। मातृसत्तात्मक परिवार या समूह ऐसे समूहों को कहा जाता है जिसमे स्त्री का स्थान प्रमुख होता है। तथा उसके निर्णय परिवार के सभी सदस्यों द्वारा मान्य होते हैं।

मारगोट सुसान्ना एडलर ने मातृसत्ता को इस प्रकार परिभाषित किया है – माँ के द्वारा शासन अथवा और व्यापक तरीके से कहा जाए तो शासन व शक्ति का माँ के हाथ में होना।[17]

मातृसत्तात्मक समाज को **Gynocentric society** (स्त्री-केन्द्रित समाज) भी कहा जाता है। इस प्रकार की समाज व्यवस्था में स्त्री, परिवार संस्था में प्रमुख मानी जाती है। परंतु इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं होता कि परिवार में उसका प्रबल प्रभाव होता है। मातृसत्ता पितृसत्ता की कोई उलट व्यवस्था नहीं बल्कि ऐसा समाज है जहां स्त्रियोचित गुणों को प्रधानता दी जाती है। अपने मातृत्व के कारण स्त्रियों को महत्व दिया जाता है तथा स्त्री और पुरुष दोनों को समाज समान दृष्टि से देखता है।

---

[17] "Government by mothers or more broadly government and power in the hands of women" https://en.wikipedia.org/wiki/Matriarchy

प्रागैतिहासिक काल में मातृसत्ता के अस्तित्व पर कई विवाद है । मानव विज्ञानी इसके उपलब्ध साक्ष्य पर एकमत नहीं हैं । मानव विज्ञानियों के एक समूह की मान्यता है कि मानव प्रजाति के संगठन से मातृ-अधिकार का अस्तित्व है । मातृसत्तात्मक प्राक्कल्पना को सर्वप्रथम समर्थन **जोहान जैकब बैचोफैन** ने Das Mutterrecht में दी । उनके तर्कानुसार मातृअधिकार के विकसित स्तर पर यह स्त्रियों द्वारा नागरिक शासन है । जिसे स्त्री-तंत्र (Gynocracy) कहा गया । मातृसत्ता का उद्भव देवी पूजन की संस्कृति से हुआ है । नवपाषाण युग में पायी गयी स्त्री पंथ की मूर्तियों से यह निश्चित होता है कि बहुत से आदिम समाज मातृसत्तात्मक थे ।

मातृसत्तात्मक परिवार की अवधारणा का उद्भव प्रकृति को माता के रूप में पूजने के विचार से हुआ है । माँ के प्राकृतिक स्वभाव को प्राकृतिक और दैवीय माना जाता है । माँ का स्वभाव सबकी परवाह करना है । एक स्त्री माँ के रूप में अपने बच्चों तथा परिवार की देखभाल करती है और ये गुण स्त्री में प्राकृतिक रूप में पाए जाते हैं । इस गुण के कारण स्त्री का बहुत सम्मान किया जाता है । वंश परंपरा में माँ और दादी माँ को बहुत सम्मान और ऊंचा दर्जा दिया जाता है । मातृभाव की धारणा केवल स्त्री से ही नहीं जुड़ी थी इसे पुरुषों से भी जोड़कर देखा जाता था । मुख्यतः अनुभवी पुरुषों से यह आशा की जाती थी कि उनके स्वभाव में मातृभाव होना   चाहिए । मातृसत्तात्मक समाज में संसाधनों पर पूरा अधिकार माँ का होता है । मातृसत्ता मदरनेचर के विश्वास से जुड़ी है । जिसने इस ब्रह्माण की संरचना की है । प्रत्येक स्त्री अपने प्रजनन की क्षमता व पालन पोषण के गुण के कारण मदरनेचर का प्रतिबिंब मानी जाती है । तत्कालीन समाज स्त्री को दैवीय अवतार मानता था जिस कारण समाज स्त्री केन्द्रित था ।

कुछ मानव वैज्ञानी का मानना है कि दिव्य पिता के सिद्धांत ने स्त्रियों के नागरिक शासन को जड़ से उखाड़   फेंका । जिस कारण मातृसत्ता के कुछ निश्चित समय के पश्चात समाज का परिवर्तन मातृसत्ता से पितृसत्ता में हो गया ।

कुछ मानव वैज्ञानी मानव अस्तित्व की मातृसत्तात्मक परिकल्पना को खारिज करते हैं । हेनरी समर मेनी अपनी पुस्तक ऐतिहासिक कानून (ancient law) में यह मान्यता प्रस्तुत करते हैं कि मानवीय समूह वास्तव में पितृसत्तात्मक प्रणाली में ही व्यवस्थित रहा है ।

सैंडी के अनुसार मातृसत्ता में उत्पादन व उपभोग की तीन प्रकार की साझेदारी पायी जाती है : -

1. **समानाधिकारवादी –** इसमें जेंडर विभाजन प्रतीकात्मक रूप से चिन्हित नहीं होते परंतु कार्य विभाजन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।
2. **डायार्किक -** डायार्किक का अर्थ द्वैतवाद से है । इस व्यवस्था में जेंडर विभाजन सांकेतिक रूप में पाया जाता है । परंतु शासन व्यवस्था का अधिकार दोनों के पास होता जाता है ।
3. **मैट्रीयार्किक –** मातृसत्तात्मक समूह, समानाधिकारवादी समूह का पर्याय है । जिसमें दोनों जेंडर एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं । अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य करने और संसाधनों पर सबके एक समान अधिकार की बात इसमें की जाती है ।
   यह व्यवस्था 'समान मातृत्व के आधार पर बहनों का समूह' सिद्धांत पर टिकी है जिसमें बहन की संतान को अपनी संतान समझा जाता है ।

1.8 पौराणिक कथाओं में मातृसत्ता

कुछ मानव वैज्ञानिकों का यह मानना है कि मातृसत्ता का वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है । समाज में इसे व्यवहार में कभी अपनाया ही नहीं गया । इनका अस्तित्व केवल पौराणिक कथाओं तक सीमित है । भारतीय पौराणिक कथाओं से यह ज्ञात होता है कि पूर्व-वैदिक काल से ही भारत में देवियों की पूजा की जाती रही है । ऋग्वेद में मईमाता का संदर्भ मिलता है जो धरती माँ के रूप में पूजी जाती थीं । बाद के समय में स्त्रियों को कथाओं में डायन, भूत आदि के रूप में भी प्रस्तुत किया जाने लगा जिससे उनकी पूर्व निर्मित छवि पर गहरा प्रभाव पड़ा । स्त्रियों की दैवीय छवि के नष्ट होने के साथ ही उनकी गुलामी का दौर भी शुरू हुआ ।

इतिहासकार 'रोनाल्ड एडमंड हटन' ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि स्त्रियों की दैवीय छवि के पूजने और भौतिक समाज में स्त्रियों की स्थिति में कोई सीधा संबंध नहीं है । दैवीय छवि के पूजन से समाज में स्त्री और पुरुष के मध्य उपस्थित भेद-भाव को पाटा नहीं जा सकता ।[18]

---

[18] there is no necessary correlation between worshiping female deities as goddesses and relative levels of egalitarianism between men and women

स्त्रियों से जुड़ी समस्याओं के विवेचन के लिए उनके समाज की संरचना को समझना आति आवश्यक है। पितृसत्ता के इन सिद्धांतों के माध्यम से' झूठा सच' उपन्यास का तृतीय अध्याय में मूल्यांकन किया जाएगा।

द्वितीय अध्याय

यशपाल की वैचारिक पृष्ठभूमि

यशपाल की वैचारिक पृष्ठभूमि

प्रस्तावना

यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर 1903 को फ़िरोज़पुर (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था।

उनकी माता का नाम प्रेमदेवी तथा पिता का नाम हीरालाल था। अपनी संतानों की सभी जिम्मेदारी प्रेमदेवी पर ही थी। उन्होंने अपने पुत्रों को हर संभव सुविधा और उच्च शिक्षा दी जो तत्कालीन समाज में एक अकेली माँ दे सकती थी। यशपाल की माँ एक पक्की आर्यसमाजी व कर्मठ महिला थी। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव यशपाल पर पड़ना अनिवार्य था। आर्य समाजी वातावरण में रहकर यशपाल ने आर्य समाज में व्यक्ति के जीवन को कड़ाई से नियंत्रित करने के प्रयासों को गहराई से समझा और उस संबंध में उन्होनें कहानियाँ भी लिखी।

युवा काल में ही सक्रिय क्रांतिकारियों के संग ने यशपाल के भीतर के मनुष्य को प्रकट किया व एक ऐसा उद्देश्य उनके सामने रखा जिसने क्रांतिकारी यशपाल की आधारशिला निर्मित की। यशपाल हिन्दी के उन प्रगतिशील कथाकारों में हैं जिन्होंने जोखिमों को जिया और शब्दों से उसे स्थाई रूप दिया। आलोचक मैनेजर पाण्डे ने यशपाल को कर्मवीर व शब्दवीर की उपाधि से सम्मानित किया। रूस की राजक्रांति से प्रभावित यशपाल देश की सामाजिक समस्याओं को भी उसी दृष्टि से देखने के हिमायती थे जिसके लिए उन्होंने मार्क्सवाद के भौतिक आधार का चुनाव किया। उस समय देश के युवाओं के बीच मार्क्सवाद की समझ धीरे-धीरे पनप रही थी। भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, यशपाल, भगवतीचरण वोहरा, दुर्गा भाभी, प्रकाशवती पाल आदि मार्क्सवाद को समझने की प्रारम्भिक अवस्था में थे। मार्क्सवाद के क्रियात्मक रूप को सैद्धांतिक मजबूती प्रदान करने की ओर यशपाल का अधिक झुकाव था। इस कार्य को उन्होंने अपनी आजीवन जेल यात्रा के दौरान शुरू किया था। यशपाल जिस सैद्धांतिक पक्ष पर बल देने की बात कर रहे थें वह वाद-विवाद का रूखा

सैद्धांतिक विमर्श नहीं बल्कि साहित्य की संवेदना के माध्यम से आम जनता तक उस वैचारिकी को पहुँचाने की ओर उनका प्रयास था जिसका सबसे उपयुक्त उदाहरण पर्दा कहानी है ।

हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र का लक्ष्य केवल देश को ब्रिटिश गुलामी से आज़ाद कराना नहीं था अपितु उनका अंतिम लक्ष्य साम्यवाद की स्थापना से था जिसका रास्ता समाजवाद से ही निकल सकता था । यशपाल का अंतर्मन अपने उद्देश्य व रास्तों के लिए कभी द्वन्द्व में नहीं रहा । यशपाल का लेखन एक विशेष उद्देश्य को लेकर चलता है । उसमें भावी समाज की जो कल्पना है वह यथास्थितिवादियों के द्वारा कभी अपनाई न जा सकी । यशपाल के रचना जगत में किसी श्रेष्ठ के लिए कोई स्थान नहीं है और न ही किसी परिस्थिति और संबंध के प्रति आश्चर्य की भावना है । स्त्री–पुरुष समानता के पक्षधर यशपाल सामाजिक रूढ़ियों के सर्वथा खिलाफ रहें ।

नरेंद्र देव यशपाल के संबंध में लिखते हैं कि यशपाल के लेखन ने आत्म-विस्मृत समाज को कलम की नोक से गुदगुदा कर जगाने की चेष्टा की है और समाज को करवट बदलते न देखकर कई जगह उसने कलम की नोक समाज के शरीर में गड़ा दी है ।[19]

2.1 रचना प्रक्रिया

लेखक आजीवन रचना की प्रक्रिया से गुज़रता रहता है मगर मस्तिष्क की उलझनों को शब्द रूप देने की प्रक्रिया के दौरान कई ठोस व धूमिल प्रश्न लेखक के मस्तिष्क में आते-जाते रहते हैं । व्यक्तिगत अनुभव तथा अन्य लेखकों और विचारकों के अध्ययन से रचना के संबंध में कुछ ठोस मानदंड लेखक के मानस में बनते हैं तथा अनुभवों के काल्पनिक चित्र भी मस्तिष्क में आकार लेते हैं । अनुभवों के समुच्चय में कुछ छूटता कुछ दृढ़ होता रहता है । यह प्रक्रिया

[19] न्याय का संघर्ष(वैचारिक निबंध संग्रह), भूमिका

आजीवन चलती रहती है और भिन्न-भिन्न विधाओं के अनुरूप स्वरूप परिवर्तन कर प्रकट होती है । इस प्रक्रिया से गुजरने के दौरान लेखक को रचना के संबंध में कई नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं । इन्ही अनुभवों से गुज़रते हुए घटना व लेखक के मध्य बनने वाले संबंध ही रचनाकार की लेखन कला को भी आकार देते हैं । यशपाल ने कहानी की रचना प्रक्रिया के विषय में कहा है कि –

"कहानी कला का वास्तविक रहस्य यह जान लेने में है कि सभी घटनाएं या तथ्य हमारी भावनाओं को नहीं छू सकते, अथवा हममें भावोद्रेक नहीं उत्पन्न कर सकते । घटनाएं अथवा तथ्य हमें तभी द्रवित करते हैं जब उनसे हमारा कोई संबंध अथवा भावात्मक संपर्क हो ।"[20]

जिस तरह सभी घटनाएं हमें द्रवित नहीं कर सकती उसकी प्रकार एक लेखक समाज की सभी समस्याओं पर अपनी भावाभियक्ति करने में सक्षम नहीं होता । उसके हृदय को जिन अनुभूतियों ने गहरा प्रभावित किया है उनकी अभिव्यक्ति ही लेखक ज्यादा ईमानदारी से कर सकता है । भावात्मक संपर्क जीवन की कई घटनाओं से हो सकता हैं लेकिन सभी घटनायें मन व मस्तिष्क पर एक समान प्रभाव नहीं डालती और न ही डाल सकती है । घटनाओं के प्रभाव का संबंध व्यक्ति की मानसिक बुनावट व जीवनानुभवों से होता है । इस करण यह प्रभाव भिन्न-भिन्न रचनाकारों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है । रचनाओं में विषय की विभिन्नता इसी प्रभाव का परिणाम है । लेखन के लिए तर्क व संवेदना दोनों की आवश्यकता एक निश्चित अनुपात में होती है । एक ओर रचनाकार जीवन की विसंगतियों का मूल्यांकन तर्कपूर्ण ढंग से करता है तो दूसरी ओर मानवता के पतन से उसका हृदय निरंतर द्रवित होता है ।

यशपाल की नज़रों में तथ्य से ज़्यादा महत्व काल्पनिक चित्रों व घटनाओं का है । ये काल्पनिक चित्र कोरी कल्पना के स्थान पर जीवन की गहराई में गहरे जुड़े होते हैं और संवेदन उत्पन्न करने में पूर्ण सक्षम होते हैं । यशपाल के अनुसार किसी तथ्य अथवा घटना

[20]यशपाल, मैं क्यों लिखता हूँ ? ,पृ. 35

से रचनाकार के संबंध के स्वरूप का निर्धारण रचनाकार के अपने भाव व विचार करते हैं अर्थात् रचनाकार के विचार जिस प्रकार के होंगे उसी प्रकार की घटनाएं उसके मन पर अपना प्रभाव डाल सकेगी । घटनाओं के भावों से संबंध के साथ ही संपर्क की बात भी यशपाल करते हैं । रचनाप्रक्रिया में महत्व इस बात का है कि संबंधित घटना का हृदय पर कैसा प्रभाव है; घटना काल्पनिक है या तथ्य इस बात का अधिक महत्व नहीं रह जाता । उनके अनुसार साहित्य के क्षेत्र में जिस चीज का महत्व है वह तथ्यों के स्थान पर उन तथ्यों से निर्मित होने वाले काल्पनिक प्रतिबिम्ब है जिसमें संवेदन उत्पन्न करने की क्षमता अनिवार्य रूप से विधमान रहती है । यशपाल के अनुसार मनुष्य का समाधान तथ्यों से नहीं उदाहरणों से ही हो सकता है लेकिन समस्या यह होती है कि प्रत्येक तथ्य के लिए समाज में जो उदाहरण उपस्थित हैं लेखक का उससे संपर्क नहीं हो सकता । ऐसी स्थिति में अपनी कल्पनात्मक शक्ति के माध्यम से घटनाओं की रचना करनी पड़ती है । उसके लिए उपयुक्त पात्रों की आवश्यकता होती है । ये पात्र अपनी भाषा और वातावरण के अनुकूल होने चाहिए जिससे पाठक को असहजता या असंभव प्रतीत न हो । कहानी और उपन्यासों में चिंतन व विचार मनोरंजन में लिपटकर पाठक के सामने आते हैं । साहित्य के क्षेत्र में महत्व तथ्य (जिसे स्पष्ट करते हुए यशपाल ने घटना कहा है)का नहीं महत्व है इन घटनाओं को आकार देने वाले यथार्थ का जो इन घटनाओं को उत्पन्न करने वाले कारण होते हैं ।

प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना में कुछ सुनिश्चित उद्देश्य लेकर चलता है । साहित्य में यह उद्देश्य समाज से गहरा जुड़ाव रखते हैं । समाज के संबंध में सबकी अलग-अलग धारणाएं हैं, जिनका निर्माण समाज और व्यक्ति के मध्य के संघर्ष से होता है । यशपाल की रचना का उद्देश्य समाज की भावनाओं में स्पंदन उत्पन्न करना रहा है और इस स्पंदन का स्वरूप कहानी में प्रवाहित लेखक के विचार निर्धारित करते हैं । अपने लेखन के माध्यम से समाज को सचेत करना लेखक का कर्तव्य है और इस कर्तव्यपूर्ति के संतोष को यशपाल ने महसूस भी किया ।

कथा को जीने के दौरान रचनाकार का अपनी रचना के साथ एक संबंध बनता जाता है। यह संबंध समय के साथ और गहरा होता रहता है और उस रचना के तन्तु अगली रचनाओं में भी पाए जाते हैं। इन तंतुओं को विचार कह सकते हैं जो रचनाकार की सभी रचनाओं के मध्य संबंध निर्मित करता है। इस तरह सभी रचनाएं एक दूसरे से एक महीन वैचारिक सूत्र से जुड़ी होती है। यशपाल की रचनाओं में यह वैचारिक संबंध सूत्र पूरी तरह व्यक्त है मगर कहीं भी बोझिल नहीं हो पायी है। रचनाकार के मन्तव्य व उसके विचार को समझने के लिए पाठक को उसकी सभी रचनाओ से गुजरना होता है क्योंकि उनकी रचनाओं में उपस्थित वैचारिकी में समय के साथ विस्तार पाया जाता है। साहित्यिक लेखन में यह विचार और भी ज्यादा कलात्मक ढंग से हमारे सामने उपस्थित होते हैं जिसमें से वैचारिकी और कला को अलग-थलग नहीं किया जा सकता। इस गुजरने की प्रक्रिया के दौरान पाठक कुछ रचनाओं में ठहराव अधिक पाता है लेकिन इससे लेखक की अन्य रचनाओं का महत्व कम नहीं हो जाता। यशपाल ने अपनी रचनाओं के विभिन्न आयामों को विविध आयामों से समझने के लिए पाठक को कई सूत्र दिए हैं। इसी संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने समाज के प्रति अपनी चिंता को व्यक्त करते हुए बताया है कि जिन परंपरागत मान्यताओं को मूल रूप में अपनाने का आग्रह समाज करता है वह समाज के लिए अत्यंत घातक है। जो मान्यताएं समय व समाज की जिन विशेष परिस्थिति में अस्तित्व में आयी थीं वें परिस्थितियां अब बदल चुकी हैं। प्राचीन मान्यताओं व परंपराओं को समय व समाज की कसौटी पर बिना कसे खारिज करने की बात यशपाल नहीं करते बल्कि उन परंपराओं को वर्तमान के अनुकूल बनाने की ओर उन्होंने ज़ोर दिया है। परंपराओं व मान्यताओं को समय के अनुकूल बना सकना एक गंभीर ज़िम्मेदारी है जिसे प्रत्येक लेखक अपने-अपने स्तर पर निभाते हैं। यह समाज की एक शाश्वत समस्या है। अपनी रचना के माध्यम से लेखक इन्हीं शाश्वत सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्ति देता है और इसके लिए विविध और व्यापक क्षेत्र हो सकते हैं।

प्रत्येक समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुछ नैतिक नियम बनाए जाते हैं । इन नैतिक नियमों का निर्धारण समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग द्वारा किया जाता है । नैतिक नियमों के परिवर्तन से उत्पन्न हानि इस वर्ग को उठानी पड़ती है । चाहे ये नैतिक मूल्य स्त्री-पुरुष के आपसी संबंध को लेकर हो अथवा जाति व्यवस्था या वर्ग संबंधी । समय के साथ-साथ जीवन शैली, उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन-उपभोग संबंध आदि में बदलाव होते रहते हैं । इन बदलावों के साथ नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन की आवश्यकता होती है । बदले हुए समय में पुरानी नैतिक मान्यताओं से चिपके रहने से समाज की कभी प्रगति नहीं हो सकती । परंपरागत मूल्यों को बदलते समय के अनुकूल बनाने की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है ।

लेखक का अपनी रचना से एक व्यक्तिगत संबंध होता है जो उसके सामाजिक सरोकार से जुड़ा रहता है । यशपाल ने लेखक की रचनाओं को उसकी संतति बताया है जिनका अपने जनक से गहरे संबंध के साथ ही एक पृथक व्यक्तित्व भी होता है और ये रचनाएं सदैव लेखक के सर्जक व्यक्तित्व का अंश बनी रहती है । लेखन यशपाल के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंश रहा है । आजीवन कारावास के दौरान उनके एकांत व मानसिक तनाव को सोखने का कार्य लेखन ने ही किया था ।

2.2 समाज

व्यक्ति के निर्माण में समाज की अपनी विशेष व अनिवार्य भूमिका होती है । भाषा से लेकर जीवन के गहन अनुभव व्यक्ति समाज से ही प्राप्त करता है । एक तरफ जहां समाज सामूहिक उद्देश्य के समक्ष व्यक्ति के व्यक्तिगत निर्णय की प्रारम्भिक अवहेलना करता है वहीं दूसरी ओर समाज व्यक्ति को निरंतर जीवन से जोड़ कर रखता है और उसे जीवन जीने का एक उद्देश्य देता है । यशपाल ने जो जीवन अनुभव समाज से पाए उसे पुनः परिष्कृत रूप में समाज को अपने लेखन के माध्यम से कर्तव्य स्वरूप वापस किए ।

समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना करना संभव नहीं है । जन्म के साथ ही मनुष्य समाज का अंग बन जाता है । उसकी धर्म, वर्ग, जाति, नाम सब उसे समाज से प्राप्त होते हैं । प्रारंभ में समाज के नैतिक मूल्य तथा निर्धारित दृष्टिकोण व्यक्ति पर अपना गहरा प्रभाव रखते हैं जो बढ़ती अवस्था के साथ धीरे-धीरे बदलने लगते हैं और यह बदलाव भी समाज से ही आता हैं । एक समय में समाज में कई विचार सक्रिय होते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । लेखक जिस समाज में जन्म लेता है उसके विचार के निर्माण में उस समाज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । एक भूखंड में कई समाज एक साथ जीवनयापन करते हैं जिनके बीच निरंतर क्रिया-प्रतिक्रिया, विचारों का आदान-प्रदान, संस्कृतियों में जोड़-घटाव होता रहता है । व्यक्ति के तर्कपूर्ण दृष्टि के निर्माण के लिए भिन्न-भिन्न समुदायों का आपसी संपर्क अत्यंत आवश्यक है अन्यथा अपने खोल में बंद समाज कभी प्रगति नहीं कर पाएगा । सही व गलत की परिभाषा का निर्धारण अन्य संस्कृतियों के संपर्क के माध्यम से ही संभव है। भारत में सती प्रथा का उन्मूलन संस्कृतियों के संपर्क से उत्पन्न तर्क का उपयुक्त उदाहरण है।

इतिहासकार **ई० एच० कार** ने अपनी पुस्तक इतिहास क्या है में स्वतंत्रता की चरम सीमा के संबंध में दास्तोवस्की की एक कहानी का संदर्भ देते हुए बताया है कि मनुष्य का कोई भी कार्य नितांत व्यक्तिगत नहीं हो सकता सिवाय आत्महत्या के । प्रत्येक समय वह संसार से गहरे रूप से जुड़ा होता है ।

यशपाल भी अपनी कल्पना समाज के संदर्भ में ही कर पाते हैं । । नितांत व्यक्तिगत की अवधारणा से यशपाल की कोई सहमति नहीं है ।

“मैं समाज और संसार से परान्मुख होकर असांसारिक और अलौकिक शक्ति में विश्वास के सहारे नहीं जी सकूँगा ।.......... मेरा सुनिश्चित दृढ़ विश्वास है कि मैं समाज और अपने

समाज के व्यक्तियों के प्रतिक्षण सहयोग और सहायता के बिना क्षण-भर भी नहीं जी सकूँगा ।"[21]

2.3 व्यक्ति

कहानी व उपन्यासों की रचना करना यशपाल की जीविका के साधन भी रहे हैं । उन्होंने समाज की सेवा अपने लेखन के माध्यम से की । मानवता का जो रंगीन कैनवास आज हमारे समक्ष उपस्थित है वह समाज के ग्रहण व त्याग का परिणाम है । रवींद्रनाथ ठाकुर कहते हैं लोहार के श्रम से उत्पन्न ध्वनि से विचलित नहीं होना चाहिए क्योंकि वीणा के तार भी वहीं बनते है । यशपाल ने भी लगातार समाज की जर्जर मान्यताओं पर कड़ा चोट किया है । व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व देने वाली नवीन परिस्थितियां अनायास ही प्राप्त नहीं हुई है । नई पीढ़ी को प्राप्त सहज वातावरण समाज निर्माताओं के संघर्ष का परिणाम है । समतावादी समाज के निर्माण में एक राजनेता और सड़क की सफाई करने वाली स्त्री का महत्व समान है ।

भारतीय समाज में हुए प्रगतिशील परिवर्तनों को साहित्य के माध्यम से समझा जा सकता है । लेखक/लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में प्रगतिशील मूल्यों के संबंध में लगातार लिखा हैं । व्यक्ति की स्वतंत्रता का सवाल आधुनिक दौर की देन है । मनुष्य ने धीरे-धीरे समाज की परिधि से केंद्र की ओर अपनी यात्रा की है ।

कबीलायी दौर में संघर्ष के बाद विजित कबीले पराजित कबीले के लोगों को मार व जला देते थे लेकिन बाद में उसने मनुष्य के कर्म के महत्व को समझ जलाने जैसे जघन्य कार्य को खतम कर दिया और पराजित समुदाय को अपने लाभ के लिए जीवित रखा । फिर एक समय ऐसा आया जब वस्तु के समान मनुष्य के क्रय-विक्रय के खिलाफ आवाज़ें उठने लगी । न्याय व समानता को विशेष समाज व समय के अनुकूल देखने की जरूरत है । ये शब्द समय के अनुसार अपनी परिभाषा बदलते हैं । कबीलायी समाज में समानता अपना अलग अर्थ रखती थी ।

---
[21] मैं क्यों लिखता हूँ ? पृ. 111

समय के साथ साहित्य चिंतन की धारा उत्तरोत्तर मनुष्य केंद्रित होती गई है। यशपाल अपनी रचनाओं में व्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में खड़े
हैं। उदाहरण प्रतिष्ठा का बोझ, धर्म रक्षा

2.4 स्त्री-पुरुष संबंध

यशपाल ने अपनी रचनाओं में स्त्री-पुरुष संबंध को कई आयामों में देखने का प्रयास किया है। इस संबंध में यशपाल पर अश्लीलता के आरोप भी लगाएं गयें है। 'रामविलास शर्मा' अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं' में लिखते हैं कि यशपाल के पात्र जनजीवन के प्रतिनिधि नहीं है। वह उस वर्ग के लोग हैं जिनके लिए सेक्स और आत्मपीड़ा की समस्याएं प्रधान है। इसलिए उनके साथ गलत या सही राजनीति जोड़ देने से ही वे प्रगतिशील नहीं हो जाते। यशपाल अपने कथा साहित्य में रूढ़िवाद से लड़ने वाली दृढ़ नारी का चित्रण नहीं दे पाते, कारण कि उसके प्रति उनका दृष्टिकोण सामंती पूंजीवादी भोगवादियों का है इस भोगवाद को उन्होंने विज्ञान का रूप देने की भी कोशिश की है।

रामविलास जी के अनुसार यशपाल ने सेक्स और आत्मपीड़ा को प्रगतिशीलता से जोड़कर देखा है और उनकी दृष्टि को सामंती पूंजीवादी भोगवादी कहा है क्योंकि उनकी नारी पात्र रूढ़िवाद से लड़ने वाली दृढ़ नारी नहीं है। ऐसा लगता है जब रामविलास जी ऐसा कह रह थें तब तक उन्होंने 'झूठा सच' की तारा और बंती के चरित्र को नहीं देखा था।
लेखक अपने समय व समाज की रूढ़िवादी मूल्यों को चुनौती देता है। प्रत्येक लेखक के विरोध के स्वर में भिन्नता पाई जाती है। स्त्री-पुरुष संबंध के विषय में यशपाल का दृष्टिकोण अपने समय के बिल्कुल अनुकूल था लेकिन उदाहरण की कमी के कारण चर्चा का अभाव था। एक प्रगतिशील लेखक समाज की केवल उन प्रवृतियों को ही शब्द नहीं देता जिसके उदाहरण समाज में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं बल्कि उसकी दृष्टि उन विषयों की ओर भी जाती है जिसने उस समय में बस सांस लेना शुरू ही किया होता है। लेखक अपने विश्लेषण शक्ति के माध्यम से यह पकड़ पाता है कि आने वाले समय में यह एक प्रमुख समस्या का रूप लेगी। उदाहरण के लिए 'मैरिटल रेप' की समस्या के बारे में यशपाल 1958-60 में लिख रहे थे और

केवल लिख ही नहीं रहे थे उनके पात्रों के सामने यह एक बड़ी समस्या थी कि इसे किस तरह पब्लिक स्फेयर का मुद्दा बनाया जाए ।

 जिन शारीरिक आवश्यकताओं को केंद्र में रख यशपाल 20 वीं सदी में कहानियां व उपन्यास लिखते हैं उन विषयों पर सन् 1882 में ही एक अज्ञात हिन्दू महिला लिख रही थी । समाज पुरुषों के संबंध में इतनी उदारता तो दिखाता ही है कि इन विषयों पर लिखते हुए उसे अपनी पहचान नहीं छुपानी पड़ती । अज्ञात हिन्दू महिला विधवाओं को संबोधित करते हुए लिखती है कि जब भी इंद्रिया परेशान करे तुरंत शादी कर लो । समाज ने यह अनुमति पुरुषों को दी है कि वे एक पत्नी के जीवित रहते हुए कईयों से विवाह कर सकते है तो तुम भी खाविंद की मृत्यु के पश्चात विवाह कर सकती हो इससे ईश्वर किसी भी प्रकार का पाप नहीं देगा क्योंकि ये सभी कुछ ईश्वर की इच्छा के अनुसार हो रहा है यदि यह पाप होता तो ईश्वर हमारे मन मे ऐसी इच्छा जागृत ही क्यों करता । दैहिक हिंसा करने वाले पति की मृत्यु के पश्चात पुनः विवाह करने की सलाह न देकर उन्होंने अकेले रहने की बात की है ।

 यशपाल जहाँ स्त्री की मुक्ति के लिए आत्मनिर्भर के साथ आत्मनिर्णय को महत्वपूर्ण मानते हैं वहीं स्त्री और पुरुष के मध्य एक स्वार्थ रहित मैत्री संबंध की कल्पना भी करते हैं । स्त्री और पुरुष को एक दूसरे को जानने का अवसर प्राप्त होने पर उनके मध्य एक दूसरे को रहस्य समझने की भावना का धीरे-धीरे लोप होता रहता है । यशपाल की रचनाओं में स्त्री-पुरुष के मध्य संबंध केवल शारीरिक जरूरतों के लिए नहीं है बल्कि उनके मध्य वैचारिक व भावात्मक संबंध भी बनते हैं जिसे उनके छोटे से उपन्यास 'बारह घंटे' में देखा जा सकता है ।

मानव शरीर के प्रश्नों को आलोचना के डर व नैतिक मूल्यों की हानि के कारण बिल्कुल दरकिनार नहीं किया जा सकता । समाज भले इन प्रश्नों को सहजता से स्वीकार न करे लेकिन ये प्रश्न समाज में जीवित होते हैं । यशपाल अपनी कहानियों के उद्देश्य की दृढ़ता के प्रति लिखते हैं कि उनकी कहानियों के सूत्र परंपरागत मान्यताओं का समर्थन नहीं अपितु अधिकांश में इन मान्यताओं के प्रति विद्रूप या विरोध रुख अपनाए हुए हैं ।

यशपाल ने अपने उपन्यास दादा कॉमरेड में विवाह से पूर्व प्रेम व शारीरिक संबंध के विषय में भी लिखा है जो आधुनिक समय में एक सामान्य(न्यू नॉर्मल) सी बात होती जा रही है।

एक से अधिक स्त्रियों के संग शारीरिक संबंध बन जाना पुरुषों की मर्दानगी का प्रश्न है जिसका समाज प्रत्यक्ष विरोध भी करता है मगर अंदर ही अंदर ऐसी चीजों को पुरुषों के संदर्भ में समाज द्वारा समर्थन भी मिलता रहता है। इसके विपरीत जब एक स्त्री के एक से अधिक पुरुषों से संबंध बनते हैं तो अपराध बोध की भावना उसे घेरने लगती है। यह अपराध बोध निरंतर उसके मस्तिष्क में बना रहता है जिस कारण वह एक ऐसे पुरुष की तलाश में रहती है जो उसे उसकी इन वास्तविक्ताओं के साथ अपना सके जबकि लड़कों के लिए यह कोई मुद्दा ही नहीं होता। 'दादा कॉमरेड' उपन्यास की शैल का मन इसी अपराध बोध से विचलित रहता है।

2.5 गांधीवाद संबंधी विचार

गांधीवाद के अनुसार अहिंसा परमेश्वर को प्रसन्न करने और परमेश्वर से साक्षात्कार पाने का मार्ग है तथा इसका व्यावहारिक रूप किसी से द्वेष न करना व किसी को दुख न देना है। यशपाल के अनुसार अहिंसा की इस परिभाषा के बाद यह व्यावहारिक वस्तु न रहकर पारलौकिक एवं आध्यात्मिक वस्तु बन जाती है और जहां कोई वस्तु आध्यात्मिक क्षेत्र के दायरे मे आ जाती है तो वह मनुष्य और समाज के हाथ से बाहर की बात हो जाती है। मनुष्य समाज उस पर सवाल नहीं उठा सकता और न ही तर्क ही कर सकता है।

गांधीवाद का व्यावहारिक रूप किसी को दुःख न देना है। यशपाल ने दुःख की परिभाषा देते हुए कहा कि जीवित रहने के लिए बुनियादी आवश्यकताओं के अभाव में मनुष्य के जीवन का नष्ट हो जाना ही दुःख है। यशपाल के अनुसार दुःख का सबसे बड़ा कारण जीवित रहने का साधन छीन लिया जाना है। जीवित रहने के बुनियादी साधन धन से उत्पन्न किये जाते हैं, मूल वस्तु धन है। जीवित रहने के साधन पर ही जीवन का अवसर अवलंबित है और साधन की प्राप्ति धन से होती है, जबकि धन किसी विशेष वर्ग के कब्ज़े में है। इनके

विचार में धन ही वो बुनियाद है जिसके संरक्षक के संरक्षण के लिए गांधीवादियों के द्वारा अहिंसा का प्रकोप रचा गया और उसे सामान्य जन की पकड़ से बाहर की वस्तु घोषित की गई । नीचे दिए गये आरेख से यह बात स्पष्ट हो सकती है ।

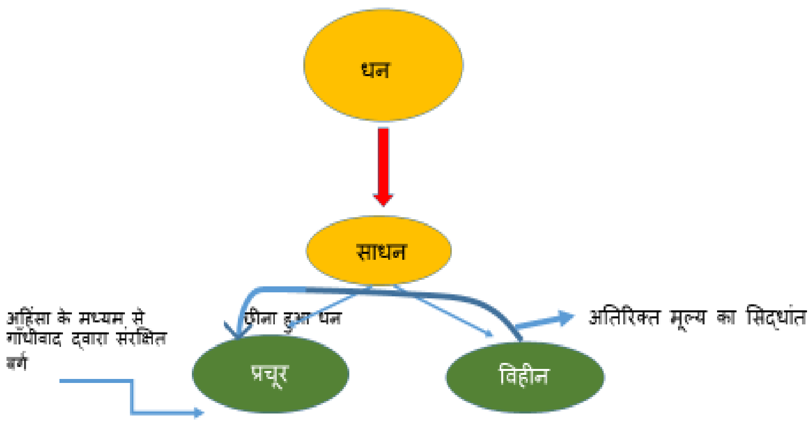

यशपाल ने हिंसा की भौतिक व्याख्या करते हुए कहा है कि मनुष्य के भौतिक जीवन में बाधा डालना ही हिंसा है । अहिंसा को आध्यात्मिक घोषित करने का एकमात्र कारण समाज की मौजूदा आर्थिक व्यवस्था की रक्षा करना है । यशपाल अहिंसा को नितांत भौतिक वस्तु मानते हैं जिसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने तर्क गांधीवाद के सिद्धांत से ही खोज कर दिये है । गांधीवाद के अनुसार किसी को दुख न देना अहिंसा है , दुख का कारण जीवनयापन के बुनियादी साधन का न होना, बुनियादी साधन के न होने का कारण धन का अभाव , धन के अभाव का कारण धन का असमान वितरण, असमान वितरण का कारण किसी विशेष वर्ग का स्वार्थ , और इस स्वार्थ की रक्षा के लिए जो आर्थिक तंत्र बनाये गए हैं उसको नष्ट करने

के लिए शोषित वर्ग के प्रयास को गांधीवाद द्वारा हिंसा का नाम दिया गया है। यशपाल ने अहिंसा का परमेश्वर समाज में मौजूद आर्थिक व्यवस्था को माना है।

मनुष्य के श्रम और पैदावार के साधनों के योग से जो धन उत्पन्न होता है उस धन पर अधिकार किसका होगा ? श्रम करने वाले का या साधनों पर अधिकार किए व्यक्ति का ?

मनुष्य का श्रम + पैदावार के साधन = धन

धन का हिस्सा बाट किस सिद्धांत के अनुसार किया जाएगा तथा इसका क्या अनुपात होगा ? आदि कुछ बुनियादी सवाल थे जिस पर यशपाल ने प्रश्नचिह्न लगाए।

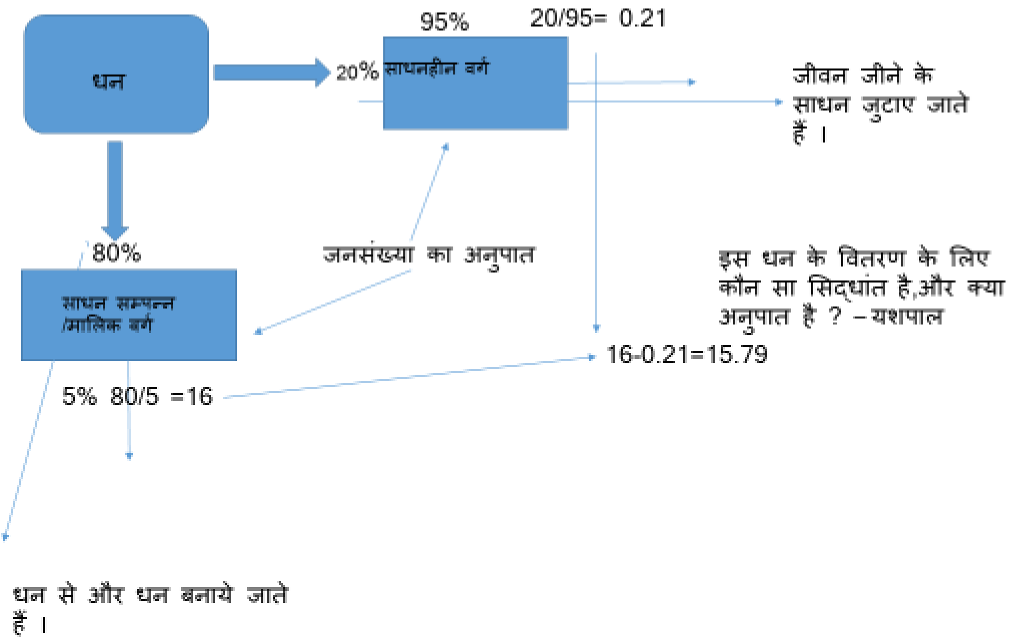

उत्पादित धन का 20 प्रतिशत भाग 95 प्रतिशत जनसंख्य के पास तथा 5 प्रतिशत जनसंख्या के पास 80 प्रतिशत धन मौजूद है। अपनी पुस्तक में यशपाल यह प्रश्न उठाते है कि धन का यह वितरण किस सिद्धांत के अनुसार किया जाता है ? साधनहीन वर्ग में प्रतिव्यक्ति को 0.21 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है जबकि साधनसंपन्न को 16 प्रतिशत। इनके मध्य अंतर 15.79 प्रतिशत का है। इतनी कम आय में साधनहीन जीवन जीने के लिए आवश्यक साधनों को भी

बहुत मुश्किल से प्राप्त कर पाता है। वहीं दूसरी ओर धन से और धन उत्पन्न किये जाते हैं। देश का प्रशासन इसी साधनसम्पन्न वर्ग द्वारा चलाया जाता है। विभिन्न देशों में देश चलाने की यहीं प्रणाली है। पहले देश के पूँजीपति अपने देश के अन्य पूँजीपतियों से आर्थिक संघर्ष करते हैं फिर उनका विजेता अन्य देशों के पूँजीपतियों से मुकाबला करता है। देश को चलाने का कार्य प्रजातन्त्र मे भी इन्ही पूँजीपतियों द्वारा किया जाता है। सामंतवादी समाज में यह संघर्ष सम्राट व सामंत के मध्य होता था।

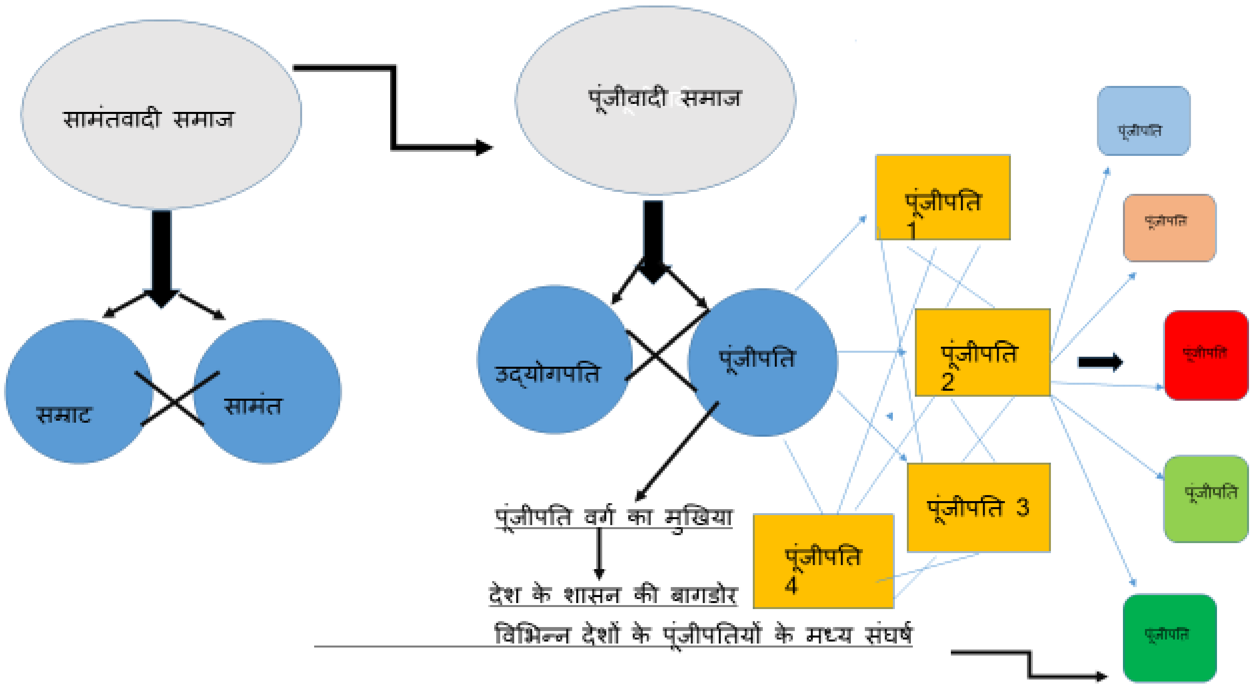

एक वर्ग की अहिंसा की परिभाषा दूसरे वर्ग को मनुष्य रूप में जन्म लेकर जीने का अवसर तक नहीं देती वहीं दूसरी ओर एक वर्ग के द्वारा की गई हिंसा जीवन रक्षा के बुनियाद पर खड़ी है। स्वामियों से धन को न लिया जाये यहीं गाँधीवाद की अहिंसा की परिभाषा है और साधनहीनों द्वारा साधनों पर अधिकार जमाने की इच्छा ही हिंसा का मूल है। यशपाल के अनुसार साधनहीनों द्वारा साधनों पर अधिकार के लिए उत्पन्न इच्छा जिसे गांधीवाद हिंसा का मूल बताता है समाज व्यवस्था को बदलने वाली हिंसा है जो जीवन जीने के अवसर को

प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है । यहाँ यशपाल ने हिंसा के सामाजिक पक्ष की पड़ताल कर उसे अनिवार्य और सकारात्मक बताया है । गांधीवाद शूद्र, दास, सेवक और मजदूर की स्तुति करने और उन्हे सर्वोपरि भी मान लेने के लिए तैयार है, बशर्ते कि वे लोग स्वयं मालिक बनने की इच्छा कभी न करें । शूद्र की ऐसी स्वयं स्वीकार की हुई दासता ही मालिकों के अधिकारों की सबसे बड़ी रक्षा और जमानत हो सकती है ।

ऊपर वाला किसी भी प्रकार की जवाबदेही से मुक्त है । भौतिक जगत में उसका कोई अस्तित्व नहीं है । जो साधनहीनों का शत्रु तथा मालिक वर्ग का बंधु है परंतु गांधीवाद का मानना है कि अमीरी अमीर के सुख का कारण नही होती और न ही गरीब अपनी गरीबी की अवस्था के कारण दुख का भोगी होता है । यह समाज का नियम है कि सभी अमीर नहीं हो सकते काइयों को गरीब ही रहना है इसलिए उन्हें भोग-वासना का परित्याग कर देना चाहिए ।

यशपाल के अनुसार समाज में बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जिन्हे पेट भर भोजन पाने या कठिनाई से अपना शरीर ढक सकने का भी अवसर नहीं है । वे लोग रोग या संकट पड़ने पर उससे रक्षा का कोई उपाय तक नहीं कर सकते । ऐसे लोगों से यदि संसार का लोभ न करने की आशा की जाय तो इसका अर्थ होगा कि वे लोग मनुष्य की तरह जीवित रह सकने की इच्छा न करके मालिकों की सेवा के लिए पशु बने रहें । स्वामी श्रेणी मजदूरों के निर्वाह के लिए उन्हें उनके द्वारा किये गये उत्पादन में से केवल उतना ही भाग देना आवश्यक समझते हैं जिससे कि मजदूर आवश्यक समय तक श्रम करने योग्य अवस्था में जीवित रह सके । मालिक श्रेणी और मजदूर श्रेणी के स्वार्थों का यह विरोध श्रेणी संघर्ष का रूप ले लेता है । यह संघर्ष पूंजीवादी प्रणाली का अनिवार्य परिणाम है । संघर्ष से ही साधनहीनों को जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं मिल सकती है और गांधीवाद इस संघर्ष को रोकने के लिए मालिक वर्ग से दया करने की याचना करता है तथा साधनहीनों को अहिंसा का पाठ पढ़ाता है ।

2.6 व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक स्वतंत्रता

सौन्दर्य का उपभोग व कला में निरत भी वहीं हो सकता है जिसके पास वक्त हो, परिस्थितियों से जूझ कर पेट भरने योग्य अन्न उत्पन्न करने में असमर्थ समूह के लिए कला और सौन्दर्य की सभी शब्दावलियाँ निरर्थक है ।

स्वतंत्रता का प्रश्न व्यक्ति की आर्थिक अवस्था से गहरे जुड़ा हुआ होता है । भूखे देश में आत्मा की स्वतंत्रता की बात एक विडंबना है । सामर्थ्य के अभाव में स्वतंत्रता का किस तरह अनुभव किया जाए ? यह यशपाल के चिंतन का मुख्य केंद्र है ।

"स्वतंत्रता और सामर्थ्य क्या भिन्न-भिन्न चीजें हैं?"[22] प्रचंड महंगाई को झेल रही आम जनता व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात कैसे कर सकती है । विदेशियों से स्वतंत्र होने के बाद इन विवशताओं को दूर करने का प्रयास जनता की सरकार को करना चाहिए । प्रश्न है कि ऐसी हालत में कितने ही व्यक्ति हैं जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उपभोग कर सकते हैं ?

"मनुष्य को यदि स्वतंत्रता हो तो सबसे पहले वह अपने दुख को दूर करने का यत्न करना चाहता है । जिसमें अपना दुख दूर करने का सामर्थ्य नहीं, उसकी स्वतंत्रता का क्या अर्थ है ?"[23] यशपाल ने स्वतंत्रता को परिभाषित करते हुए कहा है कि बिना किसी डर व दबाव के आम जनता अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सके । ख्याली व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उपभोग करना और धरातल पर सर्व साधारण को मूलभूत जरूरतों के लिए चिंतित होना एक ही बात है । स्वतंत्रता के आर्थिक परिपेक्ष्य पर विचार करते हुए यशपाल ने आम जनता के लिए जिस स्वतंत्रता की बात की है वह निम्न है –

- आवश्यकतानुसार रहने का स्थान पाने की स्वतंत्रता
- पूरा भोजन और वस्त्र पाने की स्वतंत्रता

---

[22] यशपाल रचनावली, खण्ड 11, बीबी जी कहती हैं मेरा चेहरा रोबीला है !, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक स्वतंत्रता, पृ. 450

[23] वही, पृ. 451

- संतान को अच्छी शिक्षा दे सकने की स्वतंत्रता
- आवश्यकतानुसार इलाज करा सकने की स्वतंत्रता
- बेरोजगारी व रोग की अवस्था में रक्षा की स्वतंत्रता
- असहाय होने पर रक्षा न मिल सकने के भय से स्वतंत्रता

समाज की व्यवस्था में परिवर्तन होने से व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रश्न में भी बदलाव होता है। समाजवाद की स्थापना से प्रभुत्व वर्ग की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कई ठेस पहुँचेगी इस तरह आम जनता में खप जाना उनके लिए अपमानजनक होगा। आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्ग ने संसाधनों से हीन वर्ग को उतनी ही स्वतंत्रता मुहय्या की जिससे उनकी स्वतंत्रता को हानि न पहुँचे। साधनहीन वर्ग की स्वतंत्रता साधन सम्पन्न वर्ग की दया पर निर्भर करती है। पुरुष ने भी स्त्री को उतनी ही स्वतंत्रता दी है जो स्वयं के लिए घातक न हो।

2.7 प्रजातन्त्र

पूंजीवादी प्रजातन्त्र में कानून के सामने सभी एक समान व अपने अधिकारों के प्रयोग के लिए सभी स्वतंत्र है लेकिन पूंजी के अभाव से कानून की प्रक्रिया तक की यात्रा करना आम जनता के लिए इतना सरल नहीं है। जनता शासन की नींव जिस आम चुनावी प्रक्रिया का परिणाम है, उसको संचालित करने की शक्ति उसी के पास है जो पूंजी का मालिक है अर्थात् प्रजातन्त्र में सरकार का चुनाव आम जनता नहीं उस देश के पूंजीपति करते हैं। यशपाल के अनुसार पूंजीवादी प्रजातन्त्र के आदर्श के अनुसार सरकार सब लोगों की राय से चलना चाहिए लेकिन उत्पादन का बँटवारा भी सभी की सहमति से होना चाहिए यह पूंजीवादी प्रजातन्त्र का आदर्श नहीं है।

सामूहिक स्वतंत्रता के सम्मुख व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना अनिवार्य है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सीमा वहीं तक है जहां वह अन्य की स्वतंत्रता की बाधक न हो। प्रजातन्त्रवाद में स्वतंत्रता के न्याय की धारणा इसी नियम पर कार्य करती है। लेकिन प्रजातन्त्र में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व की शक्ति को असीम रूप में बढ़ाया जा सकता है।

2.8 मार्क्सवाद

मार्क्स के पूर्व के समाजवादी विचारक यशपाल के अनुसार काल्पनिक समाजवाद का प्रतिपादन करते हैं। उनके काल्पनिक समाजवाद से मार्क्स के विज्ञान सम्मत समाजवाद के अंतर को स्पष्ट करने के लिए ही यशपाल ने उनके समाजवादी विचारों को लेकर जिस पुस्तक की रचना की है उसे मार्क्सवाद का नाम दिया है। अर्थशास्त्र और राजनीति के प्रसिद्ध रूसी विद्वान 'लियोन्तेव' मार्क्सवाद को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - "उसने बताया मनुष्य समाज का रूप और संगठन किसी अलौकिक शक्ति से नहीं बल्कि परिस्थिति और स्वयं मनुष्य समाज के विचारों, निश्चयों और कार्यों से होता है और आगे भी समाज का रूप आवश्यकतानुसार बदला जा सकता है।"[24]

मनुष्य समाज की वर्तमान अवस्था समाज की परिस्थिति व उसके विचारों का परिणाम है जिसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। अतः समाज की अवस्था ठहरी हुई चीज नहीं अपितु यह एक गतिशील प्रक्रिया का परिणाम है जिसमें भविष्य में परिवर्तन की पूरी संभावना है और इसके लिए मार्क्स ने क्रियात्मक पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। समाज में जो भी परिवर्तन होते हैं वे मनुष्य के प्रयत्न के बिना संभव नहीं हो सकते। इस परिवर्तन की सफलता श्रेणियों के परस्पर संघर्ष पर निर्भर करती है। मार्क्सवाद ने समाज के इतिहास को आर्थिक आधार पर पुनर्व्याख्यायित किया। पैदावार के साधनों पर अपना अधिकार जमाने के लिए श्रेणियों में निरंतर संघर्ष होता रहता है। समाज में जब अतर्विरोध उत्पन्न होता है तब नई व्यवस्था की जरूरत उत्पन्न होती है और नई व्यवस्था में नई अड़चने सामने आती है। इस तरह समाज में परिवर्तन और विकास निरंतर चलता रहता है।

काल्पनिक समाजवाद के अंतर्गत राबर्ट ओवन, लूई ब्लां, लास्साल और राडबर्टस आते हैं जिसे यशपाल ने भावुक सुधारकों का समाजवाद कहा है। विज्ञान सम्मत समाजवाद की प्रथम

---

[24] यशपाल रचनावली, खण्ड 11, मार्क्सवाद, मार्क्सवाद, पृ. 23

नीव मार्क्स ने रखी थी। ऐगल्स के अनुसार विज्ञान सम्मत समाजवाद को मार्क्सवाद कहना ही उचित है क्योंकि इन विचारों के अधिकांश भाग मार्क्स की देन है।

पूँजीवाद ने मनुष्य के इतिहास को केवल घटनाओं की शृंखला के रूप में ही अभिव्यक्त किया है जबकि मार्क्स ने मनुष्य समाज के इतिहास को कार्य-कारण की शृंखला में जोड़ कर देखा। प्रकृति के विकास व परिवर्तन के नियम के समान ही मनुष्य समाज के विकास व परिवर्तन के भी नियम होते है जिनका मनुष्य के प्रयत्न के बिना कोई अस्तित्व नहीं है। मार्क्सवाद के अनुसार मनुष्य समाज का संगठन अलौकिक शक्ति से नहीं अपितु इसका संगठन मनुष्य समाज के विचारों, निश्चयों और कार्यों से होता है। मनुष्य के समाज का रूप निरंतर बदलता आया है और आगे भी बदलता रहेगा। समाजवाद की स्थापना के लिए शोषित वर्ग का संगठन व प्रयत्न आवश्यक है। मार्क्सवाद में विश्लेषण का आधार इतिहास है तथा उसकी दृष्टि भौतिक व आर्थिक है। मार्क्सवाद इतिहास को मनुष्य समाज के जीवन के लिए संघर्ष करने के क्षेत्र में देखता है। मनुष्य किस प्रकार अपनी जीविका प्राप्त करता है, किस प्रकार जीवन रक्षा करता है ?, यहीं बात उसके रहन-सहन के ढंग को निश्चित करती है। किसी व्यक्ति या श्रेणी का समाज में क्या स्थान है इसकी जानकारी के लिए यह ज्ञात होना आवश्यक है कि सम्पूर्ण समाज के जीविका पैदा करने के क्रम में उस व्यक्ति या श्रेणी का क्या भाग है ?

समाज के संगठन को व्यक्तियों में नहीं श्रेणियों में देखना चाहिए। पैदावार की दृष्टि से सभी श्रेणियाँ अपना-अपना स्थान रखती है। पैदावार के साधनों पर अपना अधिकार जमाने के लिए इन श्रेणियों के मध्य जो संघर्ष चलता है वहीं मनुष्य समाज का इतिहास है। संघर्ष ही मनुष्य समाज के विकास का मार्ग है और उसमें अड़चने आती है; फिर इससे नई व्यवस्था का निर्माण होता है।

मनुष्य ने पहले संपत्ति इकट्ठा की फिर उस संचित संपत्ति से उत्पादन के साधनों पर अपना अधिकार जमाया। सम्पन्न श्रेणी ने अन्य श्रेणी के लोगों को गुलाम बनाकर पैदावार के हथियार के रूप में प्रयोग किया और उन चीजों का निर्माण किया जिसे मनुष्य का अकेला श्रम नहीं कर सकता था। गुलामों के परिश्रम के आधार पर ही समाज की संपत्ति और ज्ञान

का विकास हुआ। गुलामों के परिश्रम के कारण सम्पन्न वर्ग को ज्ञान अर्जन करने का अवसर प्राप्त हुआ जिससे कला-कौशल का विकास हुआ, मशीन व कारखाने अस्तित्व में आए। ऐतिहासिक क्रम में गुलामी की प्रथा से मनुष्य के स्वतंत्र होने के बाद अपना व्यवसाय स्थापित करने के लिए जिस धन व ज्ञान की आवश्यकता थी वह सम्पन्न श्रेणी के पास ही थी। अतः व्यवसाय की स्थापना भी सम्पन्न वर्ग ने की और उन व्यवसायों में मज़दूर की तरह काम करने के लिए गुलामी प्रथा से स्वतंत्र किए गये मनुष्य मिले। गुलाम स्वतंत्र तो हो गये मगर आजीविका उत्पन्न करने के लिए उनके पास संसाधनों का अभाव था जिसमें ज्ञान भी उत्पादन का एक साधन है था।

मशीनों के विकसित रूप के कारण कई मज़दूर बेगार हो गये। कम मजदूरों की आवश्यकता के कारण मजदूरों के बीच संघर्ष होने लगा। पूँजीपतियों को यह अवसर मिल गया कि वे कम मजदूरी पर ज्यादा मज़दूर पा सकते थे। इससे पूंजीवाद की शक्ति तो बढ़ी उसके साथ ही साधनहीन मज़दूर वर्ग की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ती चली गयी। मार्क्सवाद समाज को स्थिति, प्रतिवाद व समन्वय के आधार पर देखता है।

मनुष्य के मस्तिष्क का क्रमशः विकास हुआ है इसलिए मनुष्य के समाज का विकास भी इसी नियम का पालन करता है। मनुष्य के समाज की व्यवस्था में निरंतर परिवर्तन होते रहें है और आगे भी होने की संभावना है। मार्क्सवाद अध्यात्मवादियों के आत्मा संबंधी विचार को मानसिक अभ्यास मानता है। मार्क्सवाद का दर्शन भौतिकवाद materialism पर कायम है। मार्क्सवाद मनुष्य की नस्ल को विकसित करने की भी बात करता है। उसके अनुसार यदि पशुओं के नस्ल में सुधार किया जा सकता है तो मनुष्यों को सभी बुनियादी आवश्यकताएं देकर उसकी नस्ल को भी सुधारा जा सकता है। कम्युनिज़्म के लिए यशपाल ने समष्टिवाद शब्द का प्रयोग किया है। समष्टिवाद में प्रत्येक व्यक्ति अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य करेगा लेकिन उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही पदार्थ मिलेंगे। मार्क्सवाद में यहीं साम्यवाद की अवस्था है। कम्युनिष्टों के अनुसार मज़दूर शासन समाजवाद स्थापित करने का मात्र एक साधन है साध्य नहीं।

समाजवाद और कम्यूनिज़्म के मध्य अंतर स्पष्ट करते हुए यशपाल लिखते हैं कि समाजवाद में यदि कोई व्यक्ति अपनी योग्यता बढ़ाकर अपने श्रम का महत्व बढ़ाना चाहे तो उसे इसके लिए पूरी व्यवस्था दी जाएगी। अवसर की समानता सबके लिए समान होगी और अपने श्रम का पूरा फल पाने का अवसर होगा। समाजवादी व्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण नियम जिसका पालन सभी को करना अनिवार्य है वे निम्न है –

- कोई भी व्यक्ति पैदावार में भाग लिए बिना नहीं रहेगा
- प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी योग्यता के अनुसार काम करने का अवसर
- समान अधिकार
- समान शिक्षा की व्यवस्था
- योग्यता बढ़ाने का पूर्ण अवसर

यह अवस्था तभी आएगी जब पैदावार के साधन सभी व्यक्तियों की साझी संपत्ति होगी। मार्क्सवाद के अनुसार समता – “equal opportunity for all. From every men according to his ability to everyone according to his work.

मार्क्सवाद किसी भी प्रकार की तानाशाही के समर्थन में नहीं है लेकिन मज़दूर शासन की स्थापना के लिए जो तानाशाही मार्क्सवाद के समर्थक लेनिन द्वारा अपनायी गयी है उसके संबंध में यशपाल का कहना है कि किसी भी शासन के पास शक्ति आने पर वह तानाशाही रुख अपना ही लेता है मगर राज्य की तानाशाही में यह देखने की जरूरत है कि उस तानाशाही की पक्षधरता क्या है ? लेनिन ने भी रूस में तानाशाही को आवश्यक इसलिए माना क्योंकि पूंजीवादी ताकते समाजवाद की स्थापना के विरुद्ध थी। यहाँ पूर्ण रूप से मजदूरों के शासन स्थापन के लिए तानाशाही को आवश्यक बताया गया है।

2.9 समाजवाद और स्त्री

शारीरिक रूप से पुरुषों से कमज़ोर होने के कारण समाज में स्त्री की स्थिति पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है । समाज की आदिम अवस्था में जब मनुष्य जंगल में घूम फिर कर जंगली फलों और शिकार से निर्वाह करता था उस समय समाज में मातृसत्ता थी और संपत्ति पर स्त्रियों का अधिकार था । खेती और पशुपालन के विकास से सामूहिक संपत्ति की अवधारणा का विकास हुआ । कमजोर शारीरिक संरचना और प्रजनन की क्षमता के कारण स्त्रियों को युद्ध से दूर रखा गया । प्रजनन की क्षमता के कारण स्त्रियों को महत्वपूर्ण समझा गया और संपत्ति के अन्य साधनों की तरह उसकी हिफाजत की गयी । संपत्ति की तरह स्त्रियों का उपयोग भी किया जाने लगा । जब तक व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा का विकास नहीं हुआ था स्त्री पूरे कबीले की संपत्ति मानी जाती थी । स्त्री की अपेक्षा पुरुष पैदावार के काम को ज्यादा अच्छा कर सकता था इसलिए स्त्री को पुरुष की प्रधानता मान लेनी पड़ी ।

वैयक्तिक संपत्ति की अवधारणा के विकास के साथ स्त्री; पुरुष की वैयक्तिक संपत्ति बन गयी । पुरुष में जो शारीरिक व मानसिक विकास दिखाई देता है वह उसके सामाजिक परिस्थिति के कारण है । ये सामाजिक परिस्थिति स्त्रियों को प्राप्त नहीं हुई । पुरुष द्वारा संरक्षित अन्य संपत्तियों से स्त्री की स्थिति इस मायने में भिन्न रही कि समाज के विकास के साथ स्त्री के मस्तिष्क में भी विकास होता गया । इसी सिद्धांत को हम भारत की जातिव्यवस्था और वर्णव्यवस्था से भी जोड़ कर देख सकते है । मनुष्य की सभी जैविकीय जरूरतों से सम्पन्न दमित वर्ग अपनी सामाजिक स्थिति के कारण ही बौद्धिक वर्ग से पिछड़ा रहा । आर्थिक व सामाजिक धरातल पर परिवर्तन के फलस्वरूप स्त्री व दमित वर्ग ने अपना बौद्धिक विकास किया । बौद्धिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न तर्कशक्ति से इनके मध्य अपनी मौजूदा अवस्था को लेकर असंतोष उत्पन्न हुआ जिससे समाज में शोषक व शोषित का संघर्ष अस्तित्व में आया ।

स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण के कारण आर्थिक थे । निजी संपत्ति की अवधारणा के विकास के साथ ही संपत्ति को संरक्षित करने की जरूरत पड़ी । यह कार्य परिवार की स्थापना

से पूर्ण हुआ। स्त्रियों की यौनिकता पर इतना कठोर नियंत्रण लगाने का मुख्य कारण संपत्ति को अपनी संतान (पुत्र)को हस्तांतरित करना था। पुरुष के लिए अपनी संतान का दावा करना एक पेचीदा काम था। दो भिन्न पुरुषों से दैहिक संबंध होने से संतान के पिता का प्रश्न खड़ा होने की संभावना थी इसलिए परिवार में एक पत्नीत्व व पतित्व के नियम को कठोर किया गया। व्यक्तिगत संपत्ति के आधार पर बना हुआ परिवार और समाज तहस-नहस न हो जाय इसलिए स्त्रियों को कई नियमों और कानूनों से बांध दिया गया। पराधीनता और शासन को स्वयं स्वीकार करना ही उसके लिये सम्मान और आदर की कसौटी निश्चित की गई। उसे समझाया गया, यहाँ चाहे वह पुरुष का मुकाबिला भले ही कर ले परन्तु परलोक में उसे पछताना पड़ेगा, क्योंकि उसकी स्वतंत्रता भगवान की इच्छा और धर्म के विरुद्ध है।

मशीनों का विकास हो जाने से कठोर शारीरिक श्रम की आवश्यकता नहीं रही। 20 व्यक्तियों के काम को मशीन की सहायता से एक ही व्यक्ति द्वारा किया जा सकता था। जब कठोर श्रम की आवश्यकता नहीं रही तो इन कामों को स्त्रियां भी आसानी से कर सकती थी। मशीनों के आविष्कार से जीवन की आवश्यकता बढ़ गयी। जिसके लिए केवल पुरुष का कमाना प्रयाप्त नहीं हो सका और स्त्रियां भी उपार्जन करने लगी। औद्योगिक विकास का प्रभाव समाज के रहन-सहन के साथ स्त्रियों की अवस्था पर भी पड़ा। उन्हें पुरुषों के समान सामाजिक और राजनैतिक अधिकार मिलने लगे।

भारत में औद्योगिक विकास के फलस्वरूप होने वाला परिवर्तन देर से शुरू हुआ। यहाँ स्त्रियों की अवस्था में परिवर्तन उतना नहीं हो पाया। यहाँ जमीदार श्रेणी और पूँजीपति श्रेणी की स्त्रियाँ पुरानी अवस्था में रही जबकि मध्यम श्रेणी की स्त्रियों की स्थिति पर अधिक परिवर्तन दिखाई पड़ता क्योंकि मध्यम श्रेणी पर आर्थिक अवस्था के परिवर्तन का प्रभाव अधिक हुआ।

पूँजीवाद में स्त्रियों के लिए समस्या दोहरी हो गयी है। बेकारी की अवस्था का प्रभाव पुरुषों के समान स्त्रियों पर भी पड़ा है। आर्थिक क्षेत्र में बेकारी की मार झेल रही स्त्री की अवस्था अब वैसी नहीं रही कि वह घर वापस लौट कर केवल बच्चों के पालन-पोषण में अपना

जीवनयापन करे। आज भी स्त्री के श्रम का मूल्य पुरुषों के श्रम के मूल्य के समान नहीं समझा जाता। पूँजीवादी व्यवस्था में स्त्री की जो समस्या प्रसव के पूर्व दौरान व पश्चात आती है वह इस प्रकार है –

1. विवाह से पूर्व संतान उत्पन्न हो जाने पर स्त्री की समस्या
2. प्रसव की अवस्था में उसके निर्वाह का प्रश्न
3. जीविका छूट जाने का भय
4. प्रसव के पश्चात बेकारी की अवस्था में दो जीवन को बचाए रखने की जिम्मेदारी,
5. जिम्मेदारी से उत्पन्न तनाव और जीवन रक्षा के लिए देह व्यापार में लिप्त होना
6. संतान के अस्वस्थ होने की संभावना

पूँजीवाद में संतान व्यक्तिगत संपत्ति है जबकि समाजवाद में संतान समाज की जिम्मेदारी मानी जाएगी। समाजवाद में गर्भधारण (चाहे व विवाह से पूर्व हो या पश्चात) समाज के लिए महत्वपूर्ण कार्य है इसलिए संतान व माँ की जिम्मेदारी समाज की होगी।

समाजवादी व्यवस्था में प्रसव काल के दौरान संतान उत्पत्ति को समाज का दायित्व माना जाएगा। उसके लिए चिकित्सा की व्यवस्था, शारीरिक अवस्था के अनुसार श्रम करने व आर्थिक सहायता पाने का आश्वाशन दिया जाएगा। मार्क्सवाद में स्त्री और पुरुष का संबंध धर्म के अनुसार नहीं कर्तव्य व प्राकृतिक आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए। मार्क्सवाद स्त्री-पुरुष संबंध में उच्छृंखलता के खिलाफ है।

मार्क्सवादी नारीवाद के अनुसार साम्यवाद की अवस्था के साथ स्त्री से जुड़ी समस्याएं समाप्त हो जाएंगी इसे अंतिम सत्य नहीं माना जा सकता। स्त्री और पुरुष के मध्य पायी जाने वाली शारीरिक भिन्नता के कारण बदली हुई परिस्थिति में नई चुनौतियाँ सामने आएगी। पुरुष शारीरिक शक्ति में स्त्रियों से मजबूत होने के कारण अपने बल का प्रयोग स्त्रियों पर हिंसा करने के लिए करता है जिसका केवल आर्थिक धरातल नहीं है। विभाजन के दौरान स्त्रियों पर हुए अत्याचार का कारण आर्थिक ही नहीं है बल्कि पुरुषों की यह मानसिकता भी है कि

वे स्त्रियों के साथ मनचाही हिंसा कर सकते है। इस प्रकार की स्थिति को समय के किसी एक बिंदु पर खतम नहीं किया जा सकता इसके लिए शिक्षा का व्यापक प्रसार होना आवश्यक है। स्त्री-पुरुष साक्षरता के बीच का अंतर विभाजन से आज तक में बहुत कम हुआ है लेकिन पुरी तरह से खतम नहीं हुआ। देश के लोगों को समतावादी समाज के लिए तैयार करने की आवश्यकता है जिसमें आलोचनात्मक दृष्टि से सम्पन्न शिक्षा सहायक हो सकती है।

तृतीय अध्याय

पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में ‘झूठा सच’

पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में 'झूठा सच'

'झूठा सच' उपन्यास विभाजन की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखा गया एक बृहदकाय उपन्यास है। यह उपन्यास दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग 'वतन और देश' तथा द्वितीय भाग का नाम 'देश का भविष्य' रखा गया है । 'झूठा-सच' उपन्यास के संबंध में यशपाल लिखते हैं –

"कल्पना के सत्य को तथ्य की तरह विश्वास योग्य और कलात्मक झूठ को सच बना सकना ही कहानी की कला है। अपनी इसी सफलता के दम्भ में मैंने अपने सबसे बड़े उपन्यास का नाम 'झूठा सच' रखा। रहस्य बता दूँ कि इस 1250 पृष्ठ के उपन्यास में कोई भी घटना मेरा निजी या आँखों देखा अनुभव नहीं है। मैं अपने चारों ओर जिस यथार्थ को निरंतर अनुभव करता रहा हूँ, उसी के आधार पर यह काल्पनिक ढाँचा गढ़ा गया है।"[25]

इस उपन्यास का प्रथम भाग 1958 में 'धर्मयुग'में धारावाहिक छपने लगा और छः महीने तक छपा। इसी वर्ष उपन्यास के इस भाग को पुस्तक का रूप दिया गया। प्रकाशवती पाल ने अपने संस्मरण में इस उपन्यास के संबंध में लोगों की प्रतिक्रिया के विषय में बताया कि जब यह उपन्यास 'धर्मयुग' में छपना शुरू हुआ पाठकों के अनगिनत पत्र आया करते थें। लोगों ने उनसे बताया किस तरह जवान लड़के और लड़कियाँ 'धर्मयुग' की बेचैनी से प्रतीक्षा करते थें और कई तो उनके महानगर में बने मकान में लिखे यशपाल के नाम को प्रणाम करते हुए जाते थें। प्रकाशवती पाल आगे कहती हैं कि सन् 1956 में ही उपन्यास के संबंध में छान-बीन शुरू हो गयी थी। इस संबंध में अम्बाला से ट्रिब्यून दैनिक की फाइलें आयी। विभाजन के संबंध में खोज-बीन करने के लिए 1956-57 में दो बार पंजाब गये। यशपाल लोगों से मिलें उन

[25] मैं क्यों लिखता हूँ ?, पृ. 40

पर बीती दुखद कहानियाँ सुनी । यशपाल के अपने भाई व उसके परिवार पर भी कुछ कम नहीं बीती थी ।

'झूठा सच' के दूसरे भाग 'देश का भविष्य' के संबंध में प्रकाशवती पाल लिखतीं हैं –

"यशपाल जी ने देश का भविष्य लिखते समय भी शरणार्थियों के नया जीवन जीने की कशमकश, व्यापार, नौकरियों में अफसरशाही की धांधलियों को सहते देखा – यह गांव- शहर की समस्या नहीं, देश की समस्या थी, लाखों व्यक्तियों के नए सिरे से जमने और जीविका का प्रश्न था । देश के भविष्य में इन्हीं समस्याओं को सुलझाने की कठिनाइयों को दर्शाया है ।"[26]

प्रकाशवती पाल की बहुत इच्छा थी कि यह उपन्यास अंग्रेजी में भी अनुवादित हो जो कार्य उनके बेटे आनंद यशपाल ने पूरा किया यह पुस्तक 'दिस इस नॉट दैट डॉन' के नाम से प्रकाशित है । 'झूठा सच' उपन्यास की समझ के लिए इसके समर्पण को आत्मसात करना आवश्यक है । यशपाल ने इस उपन्यास को उन्हें समर्पित किया है जो सदैव झूठ से छले जाने के बावजूद सच के लिए अपने संघर्ष से नहीं डरतें ।

इस उपन्यास के माध्यम से यशपाल ने विभाजन के कारणों के सरलीकरण की नीति पर प्रश्न चिह्न लगाया है । भारत-पाक विभाजन के दौरान हुई हिंसा उस द्वेष का परिणाम थी जो भारतीय समाज में पहले से मौजूद हैं । उनके अनुसार विभाजन के बीज उसी दिन बो दिये गये थे जब अपने ही देश के लोगों से हमने स्वयं को अलग करना शुरू किया था । लोगों के दिलों में हुआ विभाजन सन् 1947 में हिंसक रूप में हमारे सामने आया । इसी प्रकार विभाजन के दौरान स्त्रियों पर हुई हिंसा के कारण भी हमें अपने दैनिक जीवन में ही खोजने पड़ेंगे । इस आधार पर 'झूठा सच' उपन्यास का मूल्यांकन विभिन्न शीर्षकों के द्वारा किया गया है ।

---

[26] प्रकाशवती पाल, लाहौर से लखनऊ तक, पृ. 161

3.1 विभाजन के दौरान हुई हिंसा

3.1.1 आँकड़े

यह अनुमान लगाया गया है कि विभाजन के दौरान लगभग पचहत्तर हज़ार(75,000) से एक लाख (100,000) स्त्रियों का अपहरण कर उनका बलात्कार किया गया था। ये वें आँकड़े हैं जो दस्तावेजों में दर्ज है। इसके अलावा ऐसी कई स्त्रियाँ होंगी जिन्होंने विभाजन के इस दंश को अपनी देह पर झेला होगा और उनकी आवाजें दर्ज नहीं हो पायी। व्यवस्थित तरीके से स्त्रियों के प्रति इस प्रकार की हिंसा 1947 के मार्च के महीने से शुरू होती है जब रावलपिंडी में सिख औरतों को मुसलमानों की भीड़ के निशाने पर लिया जाता है। औरतों पर हुई इन हिंसाओं में दोनों समुदायों के पुरुषों ने पूरी तैयारी के साथ भाग लिया था। रावलपिंडी में हुई इस हिंसा में औरतों का उनके संबंधियों के सामने सामूहिक रूप से बलात्कार किया गया। इससे पूर्व कलकत्ता में सीधी कार्यवाही के समय हुई हिंसा में भी औरतें बड़ी मात्रा में दैहिक हिंसा की शिकार हुई। नोआखली हिंसा के दौरान भी कई हिन्दू औरतों को अगवा कर लिया गया। इन हिंसाओं से बचने के लिए औरतों ने जो रास्ते चुने उनमें एक रास्ता कुंए में कूद कर अपनी जान दे देना था। इस प्रकार की हिंसा में दोनों ही समुदाय की स्त्रियों को अपनी आबरू की रक्षा के लिए एकमात्र रास्ता मृत्यु ही जंचा। इन हिंसाओं में जनता की रक्षक पुलिस और सेना भी शामिल थी। जो जिस धर्म से था उसने अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने समुदाय के लोगों का इस हिंसा में सहयोग किया। जिन स्त्रियों ने सहर्ष मृत्यु का वरण नहीं किया उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उनकी निर्मम हत्या कर दी गयी। कुएं में बच्चों सहित जान देने की सच्ची घटना का जिक्र कथाकार 'भीष्म साहनी' ने अपने उपन्यास 'तमस' में किया है। उर्वशी बूटालिया बताती है कि विभाजन के दौरान हुई हिंसा के आघात से कई औरतों ने अपना मानसिक संतुलन खो दिया था। वें लगातार हँसती रहा करती थीं। मुसलमान, हिन्दू व सिख तीनों ने बदले के लिए औरत की देह को ही चुना। स्त्री की देह के

साथ जोड़ दी गई धर्म व समाज की इज्जत को बचाने का प्रयास कोई नई बात नहीं है जिसके लिए अन्य धर्म व जाति की स्त्री की देह को ही निशाने पर लिया जाता है। इस देह व धर्म के संबंध के कारण ही एक समुदाय ने अगले को नीचा दिखाने के लिए स्त्री देह का चुनाव किया। स्त्रियों पर हुई दैहिक हिंसा के लिए व्यापक रूप से अन्य धर्मों के पुरुष जिम्मेदार थे लेकिन ऐसे भी उदाहरण देखने को मिले हैं जहां अपने ही समुदाय के लोगों ने स्त्रियों का दैहिक शोषण किया। इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह केवल धर्म व जाति का मुद्दा नहीं है जो इससे इतर है उसे भी आलोचनात्मक दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। विभाजन के दौरान स्त्रियों की खरीद-बेच भी की गयी। सस्ते दामों में उपलब्ध इन लड़कियों को नौकरानी बना कर रख लिया गया या ऐसे मर्दों से विवाह कर दिया गया जो केवल इनसे दैहिक सुख प्राप्त करना चाहते थे। अधेड़ उम्र के मर्दों ने जवान लड़की के लिए मुँह मांगा दाम चुकाया। देह व्यापार के लिए भी इन स्त्रियों को बेचा जाने लगा। कई बूढ़ी औरतें जो आर्थिक उपार्जन में असमर्थ थी; ने इन कैद की हुई स्त्रियों को आज़ाद कर देने का आश्वासन देकर देह व्यापार के लिए बेच तक दिया। सस्ते श्रम के लिए स्त्रियों को कारखानों में भी बेचा गया। कई घटनाएं ऐसी भी हुई जिसमें जनता के रक्षकों ने स्त्रियों के बलात्कार में पूरा सहयोग दिया। अपहृत की गयी स्त्रियों का आँकड़ा निश्चित नहीं है। इसके संबंध में अलग-अलग मान्यताएं हैं। भारत सरकार ने हिन्दू और सिख स्त्रियों के अपहरण के संबंध में जो आँकड़े प्रस्तुत किए हैं वह लगभग 33,000 है जबकि पाकिस्तान की सरकार ने मुसलमान औरतों के अपहरण के जो आकड़ें प्रस्तुत किए वह लगभग 50,000 थें। [27]

---

27 https://en.wikipedia.org/wiki/Violence_against_women_during_the_partition_of_India#CITEREFMajor,_Abduction_of_women_during_the_partition_of_the_Punjab1995

दोनों ही देशों की सरकार ने आपसी सहमति से यह फैसला किया कि जिन स्त्रियों का अपहरण कर लिया गया है उन्हें जल्द से जल्द उनके देश पहुँचाया जाए । विभाजन के दौरान जिन स्त्रियों के संग बलात विवाह कर लिया गया था ऐसे विवाह को दोनों की सरकारों ने मान्यता प्रदान करने से मना कर दिया । कुछ ऐसे भी उदाहरण सामने आयें जिनमें स्त्रियाँ ने विभाजन के दंश को अपनी किस्मत मान अपने विवाहित जीवन में खुश रहना सीख लिया था और अब अपने इस नए जीवन को छोड़ नए बने देश में अपने स्वजनों के पास लौटने को तैयार नहीं थी । बदली हुई आर्थिक स्थिति में कई स्त्रियों को बहुत सुविधा थी और उन्होंने अपने वर्तमान को स्वीकार कर लिया था । इन स्त्रियों के लिए सरकार के द्वारा लिया गया यह फैसला कष्टदायक था । कई भले पुरुषों ने गुंडों के हाथों से स्त्रियों को बचाकर उनसे विधिपूर्वक विवाह किया । इस प्रकार की एक सच्ची घटना का ज़िक्र जॉन नेपियर और लैरी कॉलिन्स की पुस्तक 'आधी रात को आज़ादी' में आया है ।

अपहृत स्त्रियों को मुक्त करने का कार्य बहुत धीमा हो गया था । कई स्त्रियों ने इस कारण भी वापस आना स्वीकार नहीं किया जिससे वे दोबारा बेइज़्ज़त होने से बच सके । उन्हें पूरी उम्मीद थी कि उन्हें उनके परिवार के द्वारा कभी भी स्वीकार नहीं किया जाएगा । इन कारणों को ध्यान में रख कर सरकार ने स्त्रियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध वापस लाने का फ़ैसला त्याग दिया । उपन्यास में आया बंती का प्रसंग इस संबंध में विचारणीय है । शेखुपुरा से उद्धार की गयी बंती अनपढ़ और आर्थिक रूप से सम्पन्न घर की महिला है । उसके परिवार पर हुई हिंसा के दौरान स्त्रियों को मुसलमान पुरुषों के द्वारा अपने कब्ज़े में कर लिया गया था । दैहिक शोषण के पश्चात बंती को एक ऐसी जगह कैद किया गया था जहां उतनी ही मात्रा में भोजन दिया जाता था जिससे कि उन्हें केवल जीवित रखा जा सके । शारीरिक व मानसिक यातनाओं को सहती हुई बंती जब अपने परिवार के पास वापस लौटती है तब उसकी सास उसे यह कह कर दूर हटने को कहती है कि अब वह उनके किसी काम की नहीं रह गई । अपने पवित्र मन का प्रमाण देती हुई बंती अन्ततः अपनी जान दे देती है । अपने जीवनसाथी से भी बंती को निराशा ही हाथ लगती है । इस सदमें को वह झेल नहीं पाती और घर की दहलीज

पर अपना माथा ठोककर मृत्यु को प्राप्त होती है और मृत्यु के पश्चात एक सुहागन की तरह उसे विदा किया जाता है । जीवित रहते जिस मनुष्य के साथ परिवार और समाज द्वारा अमानुषिक व्यवहार किया जाता है मरने पर लोग उसे सती कहकर संबोधित करते हैं । सभ्यता के विकास की जिस अवस्था में स्त्री की योनि में धर्म व संस्कृति की मान रखी गई थी उसका मूल्य बंती जैसी स्त्रियों को अपना जीवन देकर चुकाना पड़ता है और आज भी चुकाया जा रहा है ।

3.1.2 स्वरूप

उपर्युक्त अनुमानित आँकड़े के अनुसार लगभग 100,000 स्त्रियाँ दैहिक हिंसा का शिकार हुई । स्त्रियों पर हुई इन हिंसाओं के रूप भिन्न-भिन्न प्रकार के थे जिनमें से कुछ निम्न है -

सामूहिक यौन हिंसा

धर्म से उन्मादित समूह की मनोवृत्ति पर काबू पाना एक कठिन कार्य है । यह आवश्यक नहीं कि धर्म अपने लिखित रूप में और व्यवहार में एक हो । यह बहुत कुछ व्यक्ति के संस्कार और उसके विचारों पर निर्भर करता है कि वह धर्म के वाक्यों को किस तरह अपने मस्तिष्क में आकार देता है परंतु जब हम धार्मिक उन्माद में पागल भीड़ की मनोवृत्ति की बात करते हैं तब हमें समाज के बुनियादी ढाँचे को विभिन्न आयामों से परखना आवश्यक हो जाता है । विभाजन के दौरान स्त्रियों पर हुई दैहिक हिंसा विभिन्न समाजों में स्त्रियों से संबंधित दृष्टिकोण का परिणाम थी जो विश्व के अधिकांश समुदायों में लगभग एकसमान है । विभाजन के दौरान हुई धार्मिक हिंसा की सबसे बड़ी शिकार स्त्रियाँ रहीं हैं । यशपाल ने स्त्री पर होने वाली दैहिक हिंसा के आर्थिक कारणों को इस उपन्यास में घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है । यशपाल हिंदी कथा साहित्य में मार्क्सवादी साहित्यकार के रूप में पहचाने जाते हैं । विभाजन से पूर्व पंजाब की आर्थिक स्थिति के संबंध में चर्चा करते हुए यशपाल यह लिखते हैं कि विभाजन के पूर्व के लाहौर में अर्थ का वितरण आसमान था जिसमें लाहौर के 49 प्रतिशत हिन्दुओं के पास 80 प्रतिशत जायदाद थी और 51 प्रतिशत मुसलमान 20 प्रतिशत संपत्ति को साझा करते

थें। उपन्यास के प्रथम भाग के अंतिम दृश्य में यह आर्थिक विभाजन अपने विकट रूप में सामने आता है। यह दृश्य और भी विचार करने योग्य हो जाता है जब बस चालक भारत से पाकिस्तान की ओर लौट रहे काफिले को देखकर यह कहते हुए अपनी व्यथा ज़ाहिर करता है कि होते का नाम हिन्दू और मुफलिसी का नाम मुसलमान।

दयनीय आर्थिक स्थिति के आक्रोश को विभाजन की हिंसा के माध्यम से बाहर आने का अवसर मिला और इस हिंसा की केंद्र बनी स्त्री की देह। बाकर जो उपन्यास का एक पात्र है, अपने पिता के संग वह भी बंती के घर का आसामी है। बंती के साथ हुए सामूहिक बलात्कार में बाकर ने सबसे पहले पहल की। इस विषय में बंती का कथन विचारणीय है जिससे उसकी आर्थिक संपन्नता के गौरव के साथ ही अन्य धर्म के प्रति एक अपढ़ स्त्री के मन में बसी धारणा को भी समझा जा सकता है।

"बहिना, बाकर ही क्या, हम तो आस-पास के गाँवों में सबकी ही मदद करते थे। कौन काश्तकार, जमींदार वक्त पर हिन्दुओं के यहाँ कर्जे के लिए नहीं आता ? तुम जानती हो, मुसलमान क्या जो कर्ज न ले ![28]

एक अन्य कथन के माध्यम से यह भी सहज अनुमानित होता है कि सम्पन्न वर्ग अपने से निचले तबके से किस व्यवहार की कामना करता है। बाकर के पिता की सहनशीलता की प्रशंसा करती हुई बंती कहती है कि "उस बेचारे ने कभी जबान नहीं खोली"[29]

अपने पिता से आगे बढ़ा हुआ बाकर अपनी आर्थिक अवस्था से असन्तुष्ट नवयुवक है जिसके अंदर अपनी स्थिति के प्रति दैन्य के स्थान पर असमानता के कारणों को समझने की तर्क बुद्धि का अभाव तो है मगर अपनी स्थिति से उपजा एक अदमनीय आक्रोश भी है। इसी के साथ उसके मस्तिष्क में स्त्रियों को वस्तु समझी जाने वाली उस मानसिकता की परंपरा भी है जो उसे अपने धर्म,समाज, संस्कृति व परिवार से प्राप्त हुई है। इसलिए बंती के घर के अन्य

[28] झूठा सच (वतन और देश), पृ. 384
[29] वहीं

सदस्यों को भागने का अवसर देकर केवल जवान स्त्रियों को उनके देह का शोषण करने के लिए रख लिया जाता है जिससे वे अपनी हैवानियत को संतुष्ट कर सके। ऐसा मालूम होता है जैसे सदियों से व्याप्त आर्थिक असमानता व उसके कारण होने वाले शोषण की जिम्मेदार स्त्रियाँ हैं। ध्यान देने की बात है कि जिन स्त्रियों का स्वयं का अपना कोई आर्थिक धरातल नहीं होता उनसे ही उन तमाम शोषणों का मूल्य वसूला जाता है जिनमें उन्होंने शायद ही कभी सक्रिय भूमिका निभाई हो।

उपन्यास में कहीं भी सामूहिक बलात्कार की घटना का जिक्र नहीं हुआ है लेकिन उसकी संभावना के संकेत जगह-जगह उपस्थित है। अपने माता-पिता की तलाश के दौरान पुरी जब रेलयात्रा करता है उस समय कुछ सिक्खों के मध्य स्त्री के अंगों को लेकर हो रही अभद्र चर्चा एक प्रकार से उन्मादित समूह की मानसिकता को सामने रखती है। इस दृश्य में सामूहिक हिंसा की पूर्व सूचना प्राप्त होती है। एक आदमी ऊँचे स्वर में अपने साथी को कोस रहा था –

"वहीं तो असली काम की मटियार (ऊर्ध्वयौवना) थी। साले, तूने उसकी छातियाँ नहीं देखीं ? कसम है मेरी, जैसे लड़ाके तीतर चोंच उठाये हों।"[30]

जिन पुरुषों के मध्य यह बातचीत हो रही वे जाट है और देहाती मुस्लिम महिलाओं के संबंध में इस प्रकार की अभद्र भाषा के द्वारा उनके शारीरिक अंगों की चर्चा कर रहें हैं। स्त्रियों के शारीरिक अंगों के संबंध में इस प्रकार की चर्चाएं बीमार मानसिकता की द्योतक है।

युद्ध का वातावरण स्त्री के विकास व स्वभाव के प्रतिकूल है जिसे महादेवी वर्मा ने भी अपने प्रसिद्ध वैचारिक निबंध संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ' में स्वीकारा है। बलात्कार के पश्चात समाज द्वारा बहिष्कृत किए जाने का भय, आर्थिक स्वावलंबन का अभाव, शिक्षा का अभाव व समाज से सामना न कर पाने का भय इन्हें आत्महत्या के मार्ग पर ले जाता है। इन दैहिक व मानसिक शोषण के लिए किसी एक कारण को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इसमें

[30] वहीं, पृ. 363

धर्म, संस्कृति, समाज, आर्थिक व राजनीतिक शक्तियों का सम्मिलित योगदान है। इन सभी संस्थाओं की निर्णयकारी शक्तियां पुरुषों के हाथ में है अतः ये सभी क्षेत्र अपने-अपने स्तर पर पितृसत्ता से गहरा जुड़ाव रखते हैं।

स्त्रियों का क्रय-विक्रय

समाज की उत्पादन प्रणाली में अपना योगदान प्रदान करने का अवसर पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के पास कम होता है। 'झूठा सच' उपन्यास में जिस दौर की बात हो रही है उस समय यह अवसर और भी कम था। उत्पादन श्रम उस श्रम को कहा जाता है जिसके अंतर्गत वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। यशपाल ने स्त्रियों के घरेलू कार्यों को उत्पादन श्रम की श्रेणी में रखा है। घर की चिंताओं से मुक्त पुरुष केवल स्त्री के इस श्रम के कारण ही हो सकता है लेकिन इन कामों को कर्तव्य से जोड़ इसके व्यावहारिक महत्व को शून्य कर दिया जाता है। विभाजन के दौरान जिन स्त्रियों का अपहरण किया गया उन्हें पुरुषों के संतोष के लिए देह व्यापार के लिए मजबूर किया गया। समाज में स्त्रियों के श्रम का मूल्य सस्ता होने के कारण इन्हें कारखानों में भी बेचा गया। साम्यवादी समाज व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति को लेकर यशपाल लिखते हैं कि आर्थिक चिंता से मुक्त होने के कारण किसी भी स्त्री को अन्य के मन बहलाव के लिए अपनी देह को बेचने की मजबूरी नहीं होगी। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक असुरक्षा की भावना के कारण स्त्रियों को यह कार्य मजबूर होकर अपनाना पड़ता है मगर विभाजन का समय आर्थिक उथल-पुथल का समय था। यहाँ स्त्रियां केवल आर्थिक कारणों से देह व्यापार के लिए मजबूर नहीं हुई बल्कि कई-कई दिनों तक भूखा रख कर उन्हें जबरजस्ती इस ओर धकेला गया। पूर्व निर्मित योजना के तहत अन्य धर्म की स्त्रियों को उठाकर नजरबंद किया गया। उनके समक्ष ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की गई जिससे वे स्वयं ही हार मान कर उनके कहे अनुसार व्यवहार करना शुरू कर दे। कैद की गयी इन स्त्रियों को ज्यादातर अधेड़ उम्र के पुरुषों को बेचा गया था। आपदा को अवसर में बदलने का कार्य स्वयं स्त्रियों के द्वारा भी किया गया। शेखुपुरा के जिस स्थान पर तारा को अन्य स्त्रियों के संग कैद किया गया था वहाँ उन स्त्रियों को खाना पहुँचाने वाली बुढ़िया सदैव इस ताक में रहती थी

कि किस तरह किसी लड़की को अपनी बातों में फँसा कर बेच दिया जाए जिससे उसकी अपनी आर्थिक हालत सही हो सके।

नग्न शरीर का सामूहिक प्रदर्शन

विभाजन के दौरान हुई हिंसा में स्त्रियों का केवल सामूहिक बलात्कार ही नहीं किया गया बल्कि मनोरंजन के लिए उनके शारीरिक अंगों का सामूहिक प्रदर्शन भी किया गया। व्यापक रूप से स्वीकृत होने के कारण इन प्रदर्शनों में पूरा जनसमुदाय शामिल था। अन्य धर्म की स्त्रियों की देह के संग वे वह सबकुछ कर लेना चाहते थें जिसका अवसर उन्हे अब तक नहीं मिल पाया था। ऐसे वक्त में देश की न्याय व्यवस्था ने चुप्पी साध ली थी और लोगों को उनकी किस्मत के भरोसे छोड़ दिया था।

स्त्री की देह में जन्म लेने का जो कटु फल स्त्रियों को देश विभाजन के दौरान चखना पड़ा था उसकी कड़वाहट जीवनपर्यंत समाप्त न हो सकी। इस प्रकार की दयनीय परिस्थिति केवल भारत-पाक विभाजन के दौरान ही निर्मित नहीं हुई बल्कि जिन-जिन देशों में सामाजिक व धार्मिक हिंसा हुई उसका परिणाम स्त्रियों के विकास में कभी सहायक न हो सका। देश आज़ादी की जो कीमत स्त्रियों को चुकानी पड़ी थी वह निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो सकती है।

"लड़की के शरीर पर कोई कपड़ा न था। माल गाहकों को अच्छी तरह दिखा देने के लिए उसने लड़की की कमर के पीछे अपने घुटने के ठेस देकर, उसके सब अंगों को सामने उभार दिया था।.............भीड़ के बीच धरती पर कुछ और भी लड़कियाँ चेहरे बाहों में छिपाये, घुटनों पर सिर दबाये बैठी थीं। उनके कपड़े भी धरती पर पड़े थे।....."[31]

[31] वहीं, पृ. 377

अमानुषिक अत्याचार

स्त्रियों के स्तनों को काटने का कोई प्रसंग उपन्यास में उपस्थित नहीं है परंतु इस प्रकार की हिंसा भारत विभाजन के दौरान स्त्रियों के संग की गई थी। कलकत्ता में सीधी कार्यवाही के आह्वान पर हुई हिंसा के दौरान इस प्रकार की घटनाओं के संबंध में चर्चा लाहौर के भोलापांधे की स्त्रियों के मध्य होती है जिन्हें सुन स्त्रियों में सिहरन पैदा हो जाना स्वाभाविक है।

दीवानचन्द बज़ाज़ की स्त्री जीवां ने भय से सिहर कर कहा – "बहिना, सुना है औरतों की छातियाँ काट लेते हैं।"[32]

स्त्रियों के संग हुए अमानुषिक व्यवहार के लिए किसी विशेष कारण को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता उनकी दुर्गति के लिए कई कारण जिम्मेदार थे। कुछ कारण ऐसे थे जो विभाजन के दौरान ही उत्पन्न हुए और अधिकांश कारण भारत की अपनी संस्कृति व समाज के अंतर्निहित तत्वों की देन थे। जब एक पक्ष ने अन्य पक्ष के पुरुषों को अपमानित करने के लिए उनकी स्त्री की देह को चुना तब अन्य पक्ष के द्वारा इसे शांति से कैसे सह लिया जा सकता था। पशुता की होड़ में कोई पक्ष स्वयं को कम पशु साबित नहीं होने दे सकता था।

3.2 पितृसत्ता की अभिव्यक्ति के विभिन्न क्षेत्र

3.2.1 धर्म

दुनियां के सभी धर्मों ने स्त्री और पुरुष के मध्य की विभाजन रेखा को न केवल गहरा किया है बल्कि स्त्री-पुरुष के मध्य के संबंध को मालिक और नौकर के रूप में व्याख्यायित भी किया। हिन्दु धर्म में सृष्टि का निर्माता, पालक व विध्वंशक तीनों ही पुरुष है। लाखों गोपियों के साथ रासलीला करने वाले भगवान श्री कृष्ण के लिए समाज की आँखे मैली नहीं होती। कुरान में अल्लाह द्वारा निर्मित नियमों को बताने वाले और सुनने वाले दोनों ही पुरुष है। स्त्री के संबंध

[32] वहीं, पृ. 50

में जो बातें की गई हैं वह सीधे पुरुष से की गयी है स्त्रियां स्वयं वहाँ से गायब है। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के लिए स्त्री को पुरुष की अनुमति अनिवार्य है चाहे वह अबोध बालक ही क्यों न हो। धर्म अपनी शुद्धता को बनाए रखने के लिए तथा विशेष धर्म को मानने वालों की संख्या में वृद्धि करने के लिए स्त्री की योनि को प्रयोग में लाता है। शिक्षा और तर्कशक्ति के अभाव के कारण धर्म की पकड़ स्त्रियों में ज़्यादा है। पितृसत्तात्मक समाज के निर्मित ढाँचे को बनाए रखने में धर्म की प्रधान भूमिका है। भारतीय समाज में स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले व्रत या तो पति की लंबी आयु के लिए होते हैं या पुत्र प्राप्ति के लिए। स्त्री को सदा सुहागन व पुत्रवती होने के आशीर्वाद बुजुर्गों द्वारा दिए जाते हैं। पति की मृत्यु के बाद होने वाली दुर्गति के भय से स्त्रियां अपने सुहाग को आजीवन बनाए रखने के लिए कठोर से कठोर व्रत करती हैं। धर्म व जाति की शुद्धता को बनाए रखने के लिए स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक रहा है। पवित्र कुरआन मे लिखा है –

मर्द, औरतों के ऊपर कव्वाम् (संरक्षक) हैं इस आधार पर कि अल्लाह ने एक को दूसरे पर बड़ाई दी है और इस आधार पर कि मर्द ने अपना धन खर्च किया। अतः जो भली औरतें हैं वह आज्ञाकारिणी हैं, पीठ पीछे संरक्षण करती हैं उसकी जिसकी सुरक्षा का अल्लाह ने आदेश दिया है। और जिन औरतों से तुमको अनिष्ठा का डर हो उनको समझाओ और उनको उनके सोने के स्थान पर अकेला छोड़ दो और उनको दण्ड दो। अतः यदि वह तुम्हारा आज्ञापालन करें तो उनके विरुद्ध आरोप का रास्ता न तलाश करो।[33]

अल्लाह ने स्वयं ही इस बात की घोषणा कर दी है कि पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा महान है और यदि किसी औरत के द्वारा पुरुष की महानता को स्वीकार नहीं किया गया तो उसके लिए उचित दंड व्यवस्था भी की जाएगी। न कोई धर्म स्त्रियों का है और न स्त्रियों के लिए है फिर भी धर्म के प्रति सबसे ज़्यादा रुझान स्त्रियों के मध्य ही देखा जा सकता है। स्त्रियाँ पहले अपने पिता बाद में पति के धर्म को मानती है। संताने अपने पिता के वंश व धर्म से जानी जाती

[33] पवित्र कुअरान, अनुवादक मौलाना वहीदुद्दीन खाँ, संस्करण 2018, प्रकाशन गुडवर्ड्स, पृ. 75

हैं। अपने धर्म की जनसंख्या को बरकरार रखने के लिए विभिन्न धर्मों और जातियों में स्त्रियों की यौनिकता पर कड़े कानून लगाए गये हैं।

उपन्यास में नब्बू से तारा का बचाव करने वाले हाफिज़ जी तारा का धर्म परिवर्तन करवा के सवाब हासिल करना चाहते थे। उन्होंने तारा का इस्लाम पर ईमान लाने के लिए कई दिनों तक प्रयास किया। जिसके लिए उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के धर्म की तुलना करते हुए तारा को बताया –

“हिन्दुओं की सभ्यता आदिम और बर्बर है। वे लोग औरत को अपने हैवानों की तरह खानदान की जायदाद समझते हैं। बेवा को खाविन्द की लाश के साथ जला देना सवाब (पुण्य) समझते हैं। इससे ज्यादा हैवानियत और क्या होगी ?[34]

स्त्रियों की अपढ़ अवस्था के कारण धर्म के प्रति उन्हें आकर्षित करना आसान हो जाता है। धर्म परिवर्तन के पश्चात नई तरह की मुसीबतें स्त्रियों के सामने आती है इस बात से तारा अवगत थी। उसने स्वयं हाफ़िज़ जी के घरों की स्त्रियों को देखा था जिनकी अवस्था और भी दयनीय थी। सभी धर्मों के ठेकेदार स्त्रियों के अधिकारों के प्रति एक समान है। इस्लाम स्वीकार न करने पर हाफिज़ जी के घर वालों का तारा के प्रति व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है और अंत में कैम्प भेजने के बहाने उसे शेखुपुर ले जाकर बेच दिया जाता है। मानवता के धर्म का पालन करने वाले लोग सभी धर्मों में पाए जाते हैं। विभाजन पर लिखी कहानियाँ व उपन्यास में इसके कई उदाहरण मिल जाएंगे जिन्होंने अपनी जान की परवाह न करते हुए लोगों की सहायता की।

3.2.2 समाज

परिवार में स्त्रियों पर जिन पितृसत्तात्मक मूल्यों का दवाब बना रहता है समाज में उसी का विस्तार पाया जाता है। इन मूल्यों को बनाए रखने के लिए परिवार पर समाज का निरंतर

[34] वतन और देश पृ . 323

दबाव बना रहता है । स्थापित मूल्यों की रक्षा के लिए परिवार द्वारा समाज का डर दिखाया जाता है । परिवार में यें दबाव स्त्री और पुरुष दोनों पर होते हैं लेकिन दबाव की मात्रा में अंतर पाया जाता है । उपन्यास में लाहौर की भोलापांधे की गली में बसे जिस समाज का चित्रण प्रस्तुत किया गया है वह एक निम्नमध्यवर्गीय समाज है जो अपनी परंपरा से गहरे जुड़ा है । शिक्षा का प्रभाव कम है लेकिन दुख व सुख के मौके पर बढ़-चढ़ कर एक दूसरे को सहारा देने वाला यह समाज अपनी एक अलग पहचान लिए हुए है । मॉडल टाउन, ग्वालमंडी आदि में रहने वाले आर्थिक रूप से सम्पन्न, सुशिक्षित वर्ग के लोग हैं जिनके मानवीय संबंधों का दायरा बहुत सीमित है ।

निम्नमध्यवर्गीय समाजों में लोगों के मध्य एक गहरा जुड़ाव पाया जाता है । इसी लगाव के कारण वे एक दूसरे के लिए मर-मिटने अथवा मारने को तैयार हो जाते हैं । आर्थिक रूप से पिछड़े व शिक्षा के अभाव के कारण इनमें क्रोध भी अधिक मात्रा में पाया जाता है । इन समाजों में लड़की सबकी बेटी मानी जाती है और किसी गरीब संबंधी के जीवनयापन के प्रश्न को सभी मिलकर सुलझाते हैं । इन सब के अलावा इन समाजों में नैतिक मूल्य भी अपनी पुरानी अवस्था में पाए जाते हैं । इन समाजों में स्त्री और पुरुष के मध्य व्यक्तिगत संपर्क के लिए समय व स्थान दोनों की कमी रहती है । इन समाजों में स्त्रियों और पुरुषों में होने वाली बातचीत बहुत भिन्न किस्म होती है । स्त्रियों के मध्य बातचीत का मुद्दा विशेषकर विवाह, घरेलू कार्य, आपसी संबंध हैं । शिक्षा के अभाव के कारण राजनीति या अर्थनीति इनके मध्य चर्चा का विषय नहीं बनती । राजनीति व समाज में हो रहे बदलाव की खबर इन्हें पुरुषों के माध्यम से प्राप्त होती हैं । इनका जीवन घर से बाहर अपने आँगन तक ही सीमित होता है । कोई भी स्त्री उपन्यास में अपनी गली से बाहर पैर उस समय रखती है जब उन्हे दंगाइयों द्वारा मुहल्ले से बाहर निकाला जाता है । कम उम्र में ब्याह कर आयी ये स्त्रियां अपने तर्क का प्रयोग उसी सीमा तक कर पाती है जितनी की इन्हे इज़ाजत दी गई है । इनकी मानसिकता का निर्माण उन छने हुए तथ्यों व प्रसंगों से होता है जो इन्हें अपने पति और पुत्र से प्राप्त होते है । इन स्त्रियों में जाति व धर्म को लेकर कट्टर भावना देखी जा सकती है । उपन्यास में

खूहवाली माई स्त्रियों की शिक्षा के बिल्कुल खिलाफ है। उनकी नज़रों में समाज में हो रहे ये बदलाव प्रलय की भांति है। जिन स्त्रियों को अब पढ़ने और घर के बाहर निकालने की आजादी है वैसी आज़ादी इनके समय में किसी भले घर की लड़कियों को नहीं थी। ये आज़ादी केवल वेश्याओं को प्राप्त थी। अर्थात जो भी अपने मन के अनुकूल काम कर रही हैं उन्हें ये वेश्याओं के समान अनादर की दृष्टि से देखती है।

"लड़कियों को स्कूलों में भेजो। अंग्रेजी पढ़ाओ, चश्मे लगाओ, दो-दो चोटियाँ कराओ; धोतियाँ पहनाओ, चाहे नंगी रखो उसमें फरक ही क्या है ? हमें क्या, अब सब कंजरियों (वेश्याओं) की तरह आइने में मुँह देखती हैं।"[35]

समाज में सगाई शादी के बराबर ही मानी जाती है। एकबार दो परिवारों में संबंध स्थापित हो जाने के बाद संबंध विच्छेद करना संभव नहीं होता है। समाज के लिहाज से ही तारा का विवाह एक गुंडे से करवा दिया जाती है। समाज के इस दबाव से बचने का एकमात्र उपाय तारा को आत्महत्या करने पर मजबूर करता है। देश की आज़ादी के लिए आवाज़ बुलंद करने वाला पुरी अपनी बहन का प्रेम संबंध अन्य धर्म के पुरुष से होना सहन नहीं कर पाता। यहाँ मामला केवल धर्म का ही नहीं स्त्री के आत्मनिर्णय का है जिसे समाज सह ही नहीं सकता। पुरी को अपने परिवार व समाज की इज्ज़त पर ठोकर अनुभव होती है। जिसकी सजा वह तारा को देता है जबकि अपनी आर्थिक व जातिगत स्थिति से ऊपर उठकर विवाह संबंध स्थापित करने के संबंध में सोचना उसे उमंगों से भर देता है।

3.2.3 परिवार

कहना न होगा कि भारत जैसे देश में अपार समाहार शक्ति विद्यमान है। विभिन्न संस्कृतियों के मिलन ने इसकी आत्मा को और भी अधिक सम्पन्न और समृद्ध किया है। संस्कृतियों के आपसी ग्रहण और त्याग ने वर्तमान भारत की नींव रखी जो लोकतंत्र को सर्वोपरि मानता है। इस देश की सामाजिक संरचना को समझने के लिए उसकी मूल इकाई परिवार

[35] झूठा सच (वतन और देश) पृ. 49

व्यवस्था को समझना आवश्यक है। भारत में मातृवंशीय व पितृवंशीय दोनों ही प्रकार की परिवार व्यवस्था पाई जाती है मगर व्यापक रूप से यहाँ पितृवंशीय परिवार व्यवस्था को अपनाया गया है। मातृवंशीय परिवारों में भी संपत्ति व शक्ति का मौलिक अधिकारी पुरुष ही होता है। भारत का परंपरागत समाज संयुक्त परिवारों में रहने का आदी है। इन परिवारों में समूह की इच्छा व आवश्यकता को सर्वोपरि माना जाता है। परिवार के सदस्यों के मध्य मानवीयता का गहरा जुड़ाव अवश्य पाया जाता है परंतु स्त्री के परिप्रेक्ष्य से देखेने पर इन परिवारों में उसके व्यक्तित्व के विकास के बहुत कम अवसर उपलब्ध होते हैं। उसका पूरा जीवन पति, बच्चों और घर के अन्य सदस्यों की देख-रेख करने में गुज़र जाता है। आधुनिक विकास के परिणाम स्वरूप भारत के आर्थिक ढाँचे में जो बदलाव हुए उससे संयुक्त परिवार की नींव चरमराने लगी। बढ़ती महंगाई के कारण संयुक्त परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करना अब संभव न रहा। एक ही परिवार में भाइयों के मध्य एक गहरा आर्थिक विभाजन पनपने लगा।

तारा के विवाह के खर्च के लिए मास्टर रामलुभाया को अपनी पैतृक संपत्ति अपने ही भाई रामज्वाया को बेचनी पड़ती है। आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के कारण ही रामज्वाया के आगे किसी को भी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। रामज्वाया अपने साथ-साथ तारा के परिवार के फैसलों की दिशा निर्धारित करते हैं। रामज्वाया आर्थिक रूप से सम्पन्न सामंती मानसिकता के व्यक्ति है। उन्होंने अपनी बेटी शीलो का विवाह सत्रह वर्ष की आयु में ही करवा दिया था। अब वे तारा के विवाह के लिए अत्यंत चिंतित थें। वें तारा के विवाह में होने वाले खर्च का वहन करने के लिए पुरी को कम उम्र की एक ऐसी लड़की से विवाह करने का आदेश देते हैं जिससे पर्याप्त मात्रा में दहेज मिल सके और उसी दहेज से तारा का विवाह भी सम्पन्न हो जाए। दहेज की वैधता को स्वीकार करते वाले रामज्वाया की मान्यता है कि लड़कों के विवाह में दहेज इसलिए भी लिया जाना चाहिए ताकि लड़के को पढ़ाने-लिखाने में उसके पिता ने जो खर्च वहन किया है उसकी पूर्ति की जा सके।

"तुझे पढ़ाने-लिखाने में, आदमी बनाने में हमारा मास्टर का कुछ खर्च नहीं आया; तू ऐसे ही इतना बड़ा हो गया ! उसका लड़की वालों को कोई फायदा नहीं होगा ? लड़की के सुख के लिए उसके माँ-बाप अच्छा लड़का देखेंगे तो लड़के की तालीम के खर्च में, लड़की के सारी उम्र सुखी रह सकने के लिए कुछ मदद नहीं करेंगे ?"[36]

लड़की के तालीम के संबंध में उनकी मान्यता है कि उन्हे उतनी ही शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे कि उसके ससुराल वालों को आपत्ति न हो। लड़के के बी० ए० पास न होने पर लड़की को पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि अंततः उसे विवाह के पश्चात बच्चे ही जनने है जिसके लिए किसी प्रकार की तालीम की आवश्यकता नहीं होती। पढ़ने-लिखने और अपने अनुसार जीवन व्यतीत करने वाली लड़कियां उनकी नज़रों में रण्डी है। विवाह के लिए लड़की की उम्र हमेशा छोटी ही होनी चाहिए ताकि वह ज्यादा उम्र तक अपने पति के लिए जवान रह सके और उसका पति अधेड़ उम्र तक उसकी जवानी का आनंद ले सके।

"लड़की की उम्र कम है तो और अच्छा है। ज्यादा उम्र की लड़की का एतबार क्या ? लोग तो ढूँढकर कम उम्र की लेते हैं। तेरे लिए देर तक जवान रहेगी !"[37]

लड़की की बुद्धि का विकास होने से पूर्व ही उसका विवाह करवा देना चाहिए जिससे उसे काबू में रखा जा सके लेकिन उनकी इस मान्यता को करारी चोट उनकी बेटी शिलो के द्वारा ही की जाती है। बुद्धि के विकास से स्त्रियों में आत्मचेतना का विकास होता है और वे अपने निर्णय स्वयं लेने का प्रयास करती है। जाति, धर्म की शुद्धता को बनाए रखने के लिए पितृसत्ता के द्वारा स्त्रियों की यौनिकता पर जो नियंत्रण कायम किया गया है उसकी बुनियाद तब हिलने लगती है जब स्त्रियाँ अपनी इच्छा से प्रेम विवाह करना चाहती है। काल्पनिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए ही बुद्धि का विकास होने से पूर्व ही स्त्रियों का विवाह करवा दिया जाता

[36] वहीं, पृ. 81
[37] वहीं, पृ. 81

है। विवाह से पूर्व लड़के लड़की के आपस में देख लेने के संबंध में भी उनकी सामंती मान्यता को चोट पहुँचती है।

उनकी नज़रों में लड़की को देखने का एकमात्र अर्थ उसके शरीर को देखना है। वे क्रोध में पुरी से कहते है –

"कैसी होती है लड़की ! उसमें जानने-बूझने की बात क्या है। ...... तेरे देखने का समय आएगा तो तू भी सब देख लेना।"[38]

रामज्वाया को आर्य समाजी मास्टर रामलुभाया और उनकी पत्नी भागवन्ती का मौन समर्थन प्राप्त रहता है। रामलुभाया स्वयं भी तारा को इन्टर के बाद नहीं पढ़ाना चाहते थे। उन्होंने तारा को इतना भी पढ़ाने का साहस केवल अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण किया जिससे दहेज की समस्या हल हो सके। भागवन्ती के तीन बेटियाँ और दो बेटे हैं। अपनी बेटियों का उद्धार किस तरह किया जाए यह उसकी चिंता का केंद्र है। पढ़े –लिखे लड़के लड़कियों के प्रति गौरव की भावना होने के बावजूद लड़की को नियंत्रण में रखने का अधिकारी वह उसके होने वाले पति को समझती है।

परिवार में पितृसत्ता किस तरह काम करती है इसको गहराई से समझने के लिए केवल शब्द और वाक्य ही हमारे सहायक नहीं हो सकते बल्कि पूरे वातावरण का अध्ययन करना भी जरूरी है। अपने विवाह का विरोध करने पर रामज्वाया पुरी पर अत्यंत क्रोधित होते हैं और अंत में पुरी अपनी ही मन की करता है। पूरी से उसके विवाह के संबंध में विचार-विमर्श किया जाता है मगर तारा के विवाह के लिए उसकी अपनी रुचि परिवार के सदस्यों के मध्य महत्वहीन विषय है जिससे विरोध को पनपने का अवसर ही नहीं मिल पाता। विरोध उत्पन्न होने के लिए भी वातावरण की आवश्यकता होती है। पुरी अपने विरोध के अधिकार का उपयोग कर अपने अनुसार अपने जीवन को दिशा देने में सफल हो जाता है और तारा को इसके लिए अवसर ही प्राप्त नहीं होता।

---

[38] झूठा सच (वतन और देश), पृ. 81

पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था स्त्री और पुरुष दोनों को अपने नियमों के अनुसार आकार देती है इसलिए इस व्यवस्था को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए जिन मूल्यों की आवश्यकता होती है वें स्त्रियों में भी जबरजस्त तरीके से पायी जाती है। स्त्रियाँ इन मूल्यों से संचालित भी होती है और व्यवस्था का संचालन भी करती है। हिंदी साहित्य में ही इसके कई उदाहरण हमें मिल सकते हैं। मीरा ने अपने समय में अपनी सास और नन्द के संबंध में जो भी बातें कही है उसे समझना आवश्यक है। स्त्रियां पुरुष की शासन शक्ति की ओर अनायास आकर्षित होती है तथा इन शक्तियों को प्राप्त करने की लालसा उनके मन में निरंतर पनपती रहती है। सास, बहु पर अपने द्वारा किए जाने वाले शोषण से आत्मसंतोष प्राप्त करती है। पुरानी पीढ़ी की अपढ़ महिलाओं के लिए नई पीढ़ी को पढ़ते-लिखते और पुरुषों के समान काम करते देखना अस्वाभाविक लगता है। कनक को दफ्तर में पत्र का काम करते देख पुरी की माँ को अच्छा नहीं लगता था। उसके अनुसार पुरी और कनक के मध्य हो रही लड़ाइयों का मूल कारण कनक का दफ्तर में काम करना है इसके स्थान पर कनक को अपना मुहँ बंद कर अपनी गृहस्ती पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

.....मर्द, तीमी (औरत) को सिर चढ़ा ले तो फिर औरत डर क्यों मानेगी।... कुर्सी पर बराबर बैठेगी तो जबान भी लड़ायेगी। ... बड़े बुजुर्गों में तो कायदा था कि तीमी मर्दों के सामने खाट या पीढ़े-पीढ़ी पर भी नहीं बैठती थी।”[39]

और यह सिर्फ अपढ़ भागवन्ती को ही नहीं लगता बल्कि एम० ए० पास, स्वतंत्रता आंदोलनों में भाग लेने वाला क्रांतिकारी पुरी भी इस बात का समर्थन करता है कि दिन भर पुरुषों के काम करने के कारण कनक का स्त्रियोचित गुण खत्म हो गया है। पुरुष और स्त्री के कार्य का क्षेत्र विभाजन पितृसत्ता की व्यवस्था को बनाए रखने का महत्वपूर्ण उपाय है जिससे स्त्रियों के घरेलू श्रम के आधार पर पुरुषों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सके और इन घरेलू कार्यों को कोई महत्व भी देने की आवश्यकता न हो। कान्ता अपनी तरह अपनी बहन को

[39]झूठा सच (देश का भविष्य), पृ. 311

रसोई संभालने की सलाह देती है। ये ऐसी सलाह है जिससे दाम्पत्य जीवन सुखी बना रहता है। कान्ता इसी तरह अपने घर को स्वर्ग बनाए रखती है।

"मैं तो कहूँगी तुम अखबार और प्रेस के झगड़ों को छोड़ो अपना घर संभालो। मुझे तो तुम्हारा घर सदा उपेक्षित ही लगा है। जैसे गुजारा कर लेने के लिए डेरा हो। ....उसकी अफसरी के क्षेत्र में दखल ही क्यों दो ? केवल घर संभालो। घर को घर बनाओ। मैं भी रहती हूँ कि नहीं ? पत्नी और घरवाली बनकर रहो"[40]

भागवन्ती की नज़रों में पुरी और तारा एक समान नहीं है। पुरी घर का मर्द है इसलिए वह सभी फैसले पुरी की जानकारी में रखती है और सलाह लेती है। पुरी के बड़ों के सामने जबान चलाने पर भागवन्ती चुप रहती है मगर लड़कियों के ऐसा कुछ करने पर वह उन्हें रसोईघर का रास्ता दिखा देती है। भागवन्ती से थोड़े उदार मास्टर जी दिखते हैं। कनक को भी अपने पिता समान ससुर से ज्यादा सांत्वना मिलती है। स्त्रियों के मध्य पनपने वाली ईर्ष्या को यदि सरल करके समझा जाए तो उससे जो बात निकलकर सामने आती है वह यह है कि स्त्रियों में शिक्षा का अभाव होने के कारण बाहर की दुनिया से उनका सरोकार न के बराबर हो पाता है जिससे उनके सोचने समझने का एक निश्चित पैटर्न होता है। इन्ही कारणों से पुरानी पीढ़ी अगली पीढ़ी के बदलते विचारों को पचा नहीं पाती। इस संदर्भ में खूह वाली माई को देखा जा सकता है। इसके विवेचन का अन्य क्षेत्र शैक्षणिक व आर्थिक भी है। सुरेन्द्र की माँ अपने बेटे और बेटी दोनों के लिए उदार रहती है। अपनी बेटी को लिडरी करते देख वह उसे किचन का रास्ता नहीं दिखाती।

3.3 पितृसत्ता का वर्गीय आधार

पितृसत्ता एक गतिशील संकल्पना है। बदलते समय के साथ इसकी शोषण प्रणाली में भी बदलाव देखने को मिलते हैं। नारीवाद की प्रथम लहर की जो आवाज़े पितृसत्ता के विरुद्ध उठी थी उसका मुख्य उद्देश्य मताधिकार प्राप्त करना था। तत्कालीन समाज में स्त्री अधिकारों

[40] झूठा सच (देश का भविष्य), पृ. 437

के लिए प्रयासरत स्त्री-पुरुषों को स्त्री की अधीनस्थ स्थिति के कारणों में मूल कारण सरकार के चुनाव में स्त्रियों की भूमिका का शून्य होना लगा । इससे सामान्य धारणा यह बनी कि मताधिकार प्राप्त होने के पश्चात समस्यायें समाप्त हो जाएगी लेकिन जो परिणाम बाद में सामने आये उसने यह साबित किया कि केवल मत के अधिकार से समाज में स्त्रियों की अवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आ सकते । मताधिकार के प्रयोग के लिए जिस तर्कशीलता की आवश्यकता होती है अनुकूल परिस्थिति के अभाव के कारण स्त्रियाँ इससे वंचित रही हैं । मताधिकार प्राप्त होने के बाद भी यह देखना जरूरी है कि उनके इस अधिकार का संचालक कौन है । धर्म, समाज, परिवार, शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति सभी का पुरुष केंद्रित होना स्त्रियों के शोषण का मुख्य कारण है । नारीवादी आंदोलन के प्रत्येक लहर में पितृसत्ता के भिन्न-भिन्न रूपों के विरुद्ध विद्रोह किया गया है ।

भिन्न- भिन्न धर्मों की तरह ही पितृसत्ता सभी वर्गों में अपनी अलग शोषण प्रणाली का प्रयोग करती है । आर्थिक रूप से सम्पन्न व शिक्षित वर्गों में स्त्री-पुरुषों के मध्य स्थित शक्ति संबंध व शक्ति की पक्षधरता को निश्चित करना सरल नहीं होता । पितृसता के इस पक्ष को समझने के लिए कनक के पिता का उदाहरण लिया जा सकता है । पंडित गिरधारीलाल कॉंग्रेस के जाने माने नेता रहें हैं । उन्होंने अपने घर में अपनी सभी बेटियों को उच्च शिक्षा दी है । उनकी बेटियाँ किसी अनजान पुरुष से बात करने में असहजता का अनुभव नहीं करती । गिरधारीलाल जी कनक को हमेशा बेटा सम्बोधन करने के आदि है । उन्होंने अपनी बेटी कनक पर किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष दबाव नहीं रखा मगर अपने उदार व्यवहार से उन्होंने कनक पर एक प्रकार से प्रेम, चिंता व विश्वास का दबाव निरंतर बना कर रखा । कनक और पुरी के विवाह विच्छेद के समय गिरधारी जी अपनी बेटी से ज्यादा पुरी को समझदार समझकर इस संबंध में विचार करना आवश्यक समझते हैं । वे अचानक कनक के दिल्ली आकर रहने को अच्छा नहीं समझते और पुरी को सलाह देते हैं कि वह कनक को वापस ले जाए । यहाँ कनक की इच्छा व अनिच्छा की कोई बात नहीं होती ।

कान्ता अपनी छोटी बहन को अपनी गृहस्थी संभालने के उपदेश देती है। कनक के यह बताने पर कि उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए जाते हैं इस पर कान्ता अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं देती। उसके लिए अपनी बहन के साथ हो रही जबरजस्ती से ज्यादा महत्वपूर्ण यह बात है कि पुरी का पहले कहीं और संबंध था। जीवन साथी के चुनाव में स्त्री को प्राप्त अधिकार से उसकी वास्तविक स्थिति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

विभाजन के पश्चात तारा ए० ए० हवेली में गवर्नेन्स का काम करती है। उस घर की मालकिन कॉंग्रेस की कार्यकर्ता है। बाहर बड़े-बड़े लोगों से मिलना उसकी दिनचर्या में शामिल है। इतने सम्पन्न परिवार की बहु होने के बाद भी उसका पति जब चाहे उसे पीट सकता है। उसके अंदर असुरक्षा की भावना है जिसके कारण घर में जो भी स्त्री काम करने आती है उसके साथ मालकिन के संबंध खराब हो ही जाते हैं। यह असुरक्षा की भावना उसके अंदर अपनी हीन स्थिति के कारण पैदा हुई है। उसे अपनी प्राप्त सुविधाओं से निकाले जाने का डर है। घर में न सही बाहर की दुनियां में वह एक प्रतिष्ठिक युवक की पत्नी है। इन वर्गों की महिलाओं के संबंध में डॉ० प्राण का वक्तव्य महत्वपूर्ण है –

......अर्थात् संपत्ति के आधार पर संभ्रांत बनी श्रेणी की स्त्रियों का प्रयोग सेक्स के अतिरिक्त और है भी क्या ? घर के सब कामों के लिए नौकर-चाकर हैं...... पत्नियाँ केवल संपत्ति के निर्विवाद अधिकारी पैदा करने के लिए ही हैं। ...... ये स्त्री की एक ही योग्यता के बारे में जानती हैं – हाथ आ गये पुरुष को हाथ से निकल जाने न देना।[41]

निम्न मध्यवर्गीय परिवार में पितृसत्ता के शोषण के कारणों को सरलता से समझा जा सकता है। भागवन्ती का अपने बेटे पुरी के प्रति आदर की भावना पुरुष व्यक्तित्व के प्रति स्त्री में पाए जाने वाले गर्व की भावना है। इन परिवारों में स्त्री का क्षेत्र निश्चित है जो रसोईघर तक सीमित है। अपनी छोटी से छोटी आवश्यकता के लिए पुरी तारा या उषा पर निर्भर है। कपड़े स्त्री करने से लेकर पानी के गिलास की आवश्यकता के लिए भी पुरी अपनी बहनों पर

---

[41] वतन और देश पृ. 60

निर्भर है । तारा को अपने छोटे से छोटे काम के लिए भी पुरी की खिदमत करनी पड़ती है । घर से बाहर जाने के लिए पुरी की सहमति अनिवार्य है । माँ से ऊपर पुरी के आदेश का महत्व है । इस तरह दोनों ही वर्गों में पितृसत्ता कुछ विभिन्नता लिए विधमान रहती है ।

3.4 पितृसत्ता का शैक्षणिक स्तर

पितृसत्ता की शोषण प्रणाली शिक्षितों और अशिक्षतों में भिन्न-भिन्न तरह से अपना काम करती है । शिक्षित वर्गों में इसके स्वरूप को पहचानना अशिक्षितों की तुलना में कठिन है लेकिन दोनों ही वर्गों में जो समता दिखाई देती है वह पुरुषों के भीतर पाया जाने वाला अहम है । नारीवादी विचारक सेक्स और जेंडर की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि जेंडर का निर्धारण समाज के द्वारा किया जाता है जो विभिन्न समाज में अपनी क्षेत्रीयता के साथ विद्यमान है । जबकि सेक्स मनुष्य की जैविकी का हिस्सा है । परिवार और समाज के द्वारा बचपन से ही बच्चों के स्वभाव को उनके जैविकीय लिंग के अनुसार ढाला जाता है । बाल मनोविज्ञान स्त्री और पुरुष की विभिन्न भूमिकाओं को उनके वस्त्रों, रहन-सहन, स्वभाव आदि से समझता हैं । समाज द्वारा बचपन से ही पुरुष के अहम को संतुष्ट किया जाता है । गौर से देखने पर यह ज्ञात होता है कि मूल समस्या की जड़ केवल पुरुष के अहम को पोषित करना नहीं अपितु पुरुष के सामने स्त्री के अहम का कुचला जाना है । इन क्रियाओं से पुरुषों के मध्य सर्वश्रेष्टता की भावना का उदय होता है और उनकी इच्छाओं को कुचला जाना बर्दास्त से बाहर की चीज़ बन जाती है । संतोषी होना, इच्छाओं का दमन करना आदि का पाठ स्त्रियों को पढ़ाया जाता है । स्वयं को यथास्थिति के अनुकूल बनाना उनका एक गुण माना जाता है ।

सोमराज की पहली पत्नी की मृत्यु के तुरंत बाद उसके लिए विवाह के रिश्ते आने शुरू हो जाते है । सोमराज की माता जी यह कहती है कि इस बार वह देख सुन कर सुंदर बहु अपने बेटे के लिए चुनेगी ताकि घर में बेटे का मन लग सके । तारा की मृत्यु की अफवाह के तुरंत बाद सोमराज के अपनी ही भाभी से संबंध बनते है । इन सभी के लिए सोमराज के स्थान पर

स्त्री को दोषी और मायावी साबित किया जाता है। इस तरह से परिवार और समाज में सम्मान पाने का आदि सोमराज तारा के द्वारा अपनी उपेक्षा सहन नहीं कर पाता और इसकी सजा वह तारा को जरूर देता है। विवाह के पश्चात सोमराज जिस भाषा में तारा को गाली देते हुए बात करता है उसके माध्यम से स्त्री को लेकर उसके निर्मित संस्कार को समझा जा सकता है।

"भूखे मास्टर की औलाद, तेरी हिम्मत कि मुझसे शादी के लिए मिजाज दिखाये ?... बी०ए० पढ़ने का बहुत घमण्ड है ! तेरी जैसी बीसियों को टाँगों के बीच से निकाल दिया है।" [42]

इसी दौरान वह तारा पर हिंसा करता है, उसे मारता है और सबके सामने ज़लील करने की धमकी भी देता है। इस प्रकार की हिंसा का प्रतिकार कई हद तक किया जा सकता है। हिंसा के विषय में बताया भी जा सकता है। शिक्षित वर्गों के मध्य चीजें इतनी स्पष्ट नहीं होती। यहाँ पितृसत्ता के स्वरूप को समझने के लिए उनके स्वभाव का अध्ययन करना आवश्यक होता है।

कई क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उनकी अवस्था में सुधार की अब कोई आवश्यकता नहीं रही। समाज, परिवार, अर्थनीति, राजनीति और विधि के क्षेत्र में अभी भी निर्णयकारी भूमिका पुरुषों की है। अधिकारों की प्राप्ति, उनका प्रयोग व प्रयोग के परिणाम स्वतंत्रता प्राप्ति के तीन पड़ाव है। एक के भी विफल होने से संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। यशपाल जिस महत्वपूर्ण पड़ाव की चर्चा करते हैं वह अधिकारों के प्रयोग के लिए आवश्यक साधन की उपलब्धता से है। साधनों के अभाव में प्राप्त अधिकारों का किस भाँति प्रयोग किया जा सकता है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। जिसकी चर्चा उनके निबंध 'सामूहिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता' में की गयी है। संगठन के अभाव में अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आंदोलनों के वातावरण का निर्माण एक बड़ी चुनौती है। संगठन के पश्चात अधिकारों को प्रयोग करने के लिए

[42] वतन और देश पृ 308

अनिवार्य साधनों की कमी और साधनों के प्रयोग का सलीका सीखना भी अनिवार्य है। उसके बाद अधिकारों के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले परिणामों के लिए मानसिक रूप से तैयार रहना भी आवश्यक है। घर में आय दिन क्लेश, अकेलापन, अवसाद, ईर्ष्या, त्याग दिए जाने के भय आदि से गुजरना पड़ता है। आधुनिक भारतीय पितृसत्ता ने जिस रूप में स्त्रियों को शोषित किया है उसे कपूर द्वारा कही गयी बातों से अनुमान लगाया जा सकता है जिसमें वह स्त्री के विवाह से पूर्व बने शारीरिक संबंध के विषय में अपनी राय रखते हुए कहता है –

'कपूर ने बेशर्मी से उत्तर दिया – मैं अपनी कमजोरी और गलती मानता हूँ। उसके लिए हर्जाना भर सकता हूँ परन्तु जिस लड़की का छिछोरापन जान चुका हूँ उससे विवाह नहीं कर सकता। हम इधर उधर चाहे जो करें लेकिन विवाह और परिवार का आधार पवित्र होना चाहिए। वह लड़की जरूर पहले से खराब थी वर्ना मेरे आग्रह पर भी विवाह से पहले समर्पण का क्या मतलब था ? यदि वह सच्चरित्र थी तो उसे दृढ़ रहना चाहिए था।'[43]

यह उच्च मध्यवर्गीय संभ्रांत परिवार के एक लड़के का कथन है जिनके यहाँ राजनीति की चर्चा उपेक्षा का विषय है। प्रेम विवाह को संस्कारों के विरुद्ध मानते है क्योंकि विवाह के पश्चात प्रेम तो हो ही जाएगा यदि प्रेम विवाह से पूर्व कर लिया जाए तो उसके पश्चात करने को क्या बचा रह जाएगा ? विवाह से पूर्व प्रेमी के आग्रह पर संबंध स्थापित किए जाने के पश्चात प्रेमी का अपनी प्रेमिका के चरित्र का ऐसा विश्लेषण भारत में आम है। शारीरिक संबंध स्थापित करना स्त्री का कुछ छिन जाना समझा जाता है जिसके लिए कपूर हर्जाना भरने की बात करता है। जिस समाज में अपनी इच्छा से बने संबंधों के विषय में यह मानसिकता है तो बलात्कार पीड़िता के संबंध में उनके क्या विचार होंगे यह सहज ही अनुमानित किया जा सकता है। स्त्री और पुरुष के शारीरिक संबंध को हानि और लाभ की दृष्टि से देखना, हानि सहने वाले पक्ष के लिए हर्जाना देना पितृसत्ता का आधुनिक रूप है क्योंकि आधुनिक समय में विवाह से पूर्व प्रेम संबंध व शारीरिक संबंध एक आम बात बन गयी है। इन संबंधों के प्रति

[43] वही, पृ. 455

प्रत्येक व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण होता है जो उसके वातावरण पर निर्भर करता है और उस वातावरण का निर्माण भी व्यक्ति ही करता है। पहले संबंध बनाने के लिए आग्रह करना उसके बाद सच्चरित्र होने का पाठ पढ़ना समाज में अधिकांश पुरुषों की आम मानसिकता है। सच्चरित का पाठ केवल और केवल लड़कियों को पढ़ाया जाएगा क्योंकि शारीरिक संबंध के दौरान उसकी हानि हुई है और लाभ पुरुष को मिला है इसलिए उसके चरित्र पर उठाये जाने वाले प्रश्न बनाएं ही नहीं गये हैं। चाहे सवाल स्वीकृति का हो या बलात का दोनों में हानि का तात्पर्य स्त्री की पवित्रता से जुड़ा है। दोनों ही स्थिति में जो चीज समान है वह है योनि की शुचिता। स्त्री का चरित्र उसकी योनि की शुचिता के द्वारा निर्धारित किया जाता है।

घोर प्रगतिशीलता का चोला ओढ़े रहने वाले जयदेव पुरी की वास्तविक्ता समय के साथ स्पष्ट होने लगती है। उच्च शिक्षा प्राप्त कनक को अपने विचारों के अनुकूल पत्र में एक लेख लिख सकने की भी अनुमति नहीं होती। ऐसा करने पर उसे घमंडी और असहिष्णु कहा जाता है। घर व बाहर पति की उपेक्षा सहनी पड़ती है। घर का वातावरण अशान्ति से भर जाता है जिसका कारण अपने व्यक्तित्व को बनाए रखने का संघर्ष है। कांता के लिए कनक का खुद को वैश्या कहना, इच्छा न होने पर भी संबंध बनाने के लिए मजबूर करना प्राथमिकता का विषय नहीं है बल्कि पुरी और उर्मिला का संबंध उसके लिए कनक के प्रति पुरी का अन्याय है। कनक अपने साथ हो रहे अन्याय के विषय में कहती है -

विवाह किया था तो प्रॉस, रखैल या क्रीतदासी तो नहीं हूँ कि मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं !........ [44]

कनक आगे कहती है - "पर मैं नहीं चाहती तो मुझे क्यों परेशान किया जाये ? परेशान करना हक बना लिया जाये ?[45]

---

[44] वही, पृ. 438
[45] वही, पृ. 438

कांता ने अविश्वास प्रकट किया – “इसमें परेशानी की बात क्या है।” और फिर सहानुभूति से पूछा, “तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है, तुमने किसी अच्छे डॉक्टर से राय ली है ?[46]

एक स्त्री और बहन होकर भी कान्ता कनक की मूल समस्या को नहीं समझ पाती। कनक जिस बात को कांता को समझाने का प्रयास करती है उसके लिए कांता का मस्तिष्क तैयार ही नहीं है। उसके अनुसार पति के साथ संभोग स्त्री का कर्तव्य है और कनक कर्तव्य पालन के प्रति उपेक्षा दिखा रही। इन कर्तव्यों का पालन कांता वर्षों से करती आ रही है और इसमें किसी भी प्रकार की बुराई उसे नजर नहीं आती। वह एक स्वस्थ वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही। ऐसा स्वस्थ वैवाहिक जीवन जिसमें अपनी माँ के समान कान्ता के व्यक्तित्व पर भी उसके पति नैयर का व्यक्तित्व हावी है।

मैरिटल रेप जैसी अवधारणा पर विचार-विमर्श भारत में बहुत बाद में शुरू हुआ। जिसे ‘झूठा सच’ में यशपाल ने कनक व पुरी के संबंध के माध्यम से दिखाया है। यशपाल ने कनक को विद्रोह का स्वर व निडर व्यक्तित्व प्रदान किया है जिस कारण वह इन विषयों पर अपनी प्रतिक्रिया दे सकती है और अपना संबंध विच्छेद भी कर सकती है।

पुरी को शारीरिक संबंध के लिए उर्मिला और मानसिक शांति के लिए कनक की आवश्यकता होती है। वह अपने स्वार्थ के लिए दोनों को अपने साथ रखना चाहता है। अपने जीवन साथी की किसी अन्य से तुलना करना और अन्य को बेहतर बताना ऐसा करने की स्वतंत्रता केवल पुरुष को ही है। पत्नी की इच्छा न होने पर किसी अन्य से संभोग करने की इच्छा जाहिर करना पितृसत्तात्मक समाज में एक पुरुष ही कर सकता है। पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ जबरजस्ती करना भी पुरुष के लिए न्याय संगत है।

[46] वही, पृ. 438

कनक की आँसू भरी आँखे लाल हो गयी । क्रोध में कह गयी –"फिर मर्दानगी पागल करने लगती है । पति होने का हक दिखाना जरूरी हो जाता है । मैं यह सब कैसे सहती रहूँ । मुझसे नहीं होता ।"[47]

पैसे खर्च करने की पूरी आज़ादी, घर-संपत्ति की मालकिन होने के बाद भी कनक पति की अनुमति लिए बिना एक लेख भी नहीं लिख सकती । स्त्री के नाम भौतिक संपत्ति होने से उसकी पारिवारिक हैसियत का अनुमान नहीं लगाया जा सकता । पुरी का कथन इस संदर्भ में विचारणीय है ।

"मैं जो कहता हूँ, परस्पर हित के लिए, उसके हित के लिए भी कहता हूँ । इसमें मेरा विशेष क्या है ? रुपये-पैसे के मामले में जो चाहे करती है । मकान उसी के नाम है । मैंने सदा उसे अपने से अधिक महत्व दिया ।"[48]

पिता के लिए बेटी का अपना घर पति का घर ही होता है । बेटी को हमेशा अपने पति के अनुकूल ही रहना चाहिए । पति हमेशा ज्यादा समझदार होता हैं और उसकी भूमिका भी अधिक महत्वपूर्ण होती है । पति अपनी पत्नी का पथ प्रदर्शक होता है । ऐसी बाते पिता अपने जमाई से कहता है ताकि वह पत्नी को अपने घर वापस ले जाए ।

स्त्रियों की पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को हमेशा समझौता करने की ही सहाल देती है । जो कनक को सब ओर से दिया जाता है –

हीरा घी लिए समीप खड़ी थी । कुछ सोच कर बोली – "ना पुत्तर, (बेटे) इन बातों पर नहीं रोना चाहिये । तू समझदार है, मिन्नत-खुशामद कर लेते हैं । तीमी (अबला) का क्या है । तू सुलक्खनी (सुलक्षणी) है । परमेश्वर जी न करे, तुझे तो कभी फूल भी नहीं छुआया । मेरे तो हाड़-गोड़ तोड़ देता था । मर्दों को तो गुस्सा आता ही है..........।"[49]

---

[47] वही, पृ. 438
[48] वही, पृ. 436
[49] वही, पृ. 424

मर्दों को गुस्सा वहीं आता है जहां गुस्सा दिखाने का अधिकार उन्हें व्यवस्था से प्राप्त है। मर्दों को गुस्सा आता ही है यह एक प्रकार का सामान्यीकरण है जो समाज में मर्दों के गुस्से को न्यायसंगत ठहराने का एक तरीका भी है। यथास्थिति से समझौता स्त्रियों की नियति बन चुकी है इसके बाहर सोचने समझने के लिए जैसी शिक्षा की आवश्यकता है उनसे यह पीढ़ी वंचित रही है। अपनी सामाजिक, आर्थिक स्थिति के अनुसार वे वहीं बाते कहती है जो समाज के अनुकूल है मगर कनक एक भिन्न आर्थिक व सामाजिक वर्ग से आती है उसके लिए समझौता करना उतना आसान नहीं है। कनक को पत्नी की तरह अनुगत न होने का ही दंड दिया जा रहा था। पुरी अपने और कनक के बिगड़ते संबंध के विषय में सोचता है कि पुरुष की तरह काम करने से कनक का नारीभाव दब गया है। यहाँ नारीभाव से तात्पर्य घर को घर बनाए रखने की जिम्मेदारी से है। वें जिम्मेदारियाँ पति के घर आने पर उसकी सभी आवश्यक वस्तुओं को मांगने से पहले उनके समक्ष रख देना। उसकी जरूरतों के प्रति सदैव सतर्क रहना आदि है।

घर से निकल कर खुले आर्थिक क्षेत्र में काम करना पुरुषों की तरह काम करना है जिससे स्त्री के स्वाभाविक गुणों का ह्रास होता है इसलिए कनक घर वापस लौट कर अपनी जिम्मेदारियों का वहन करे यह बात पुरी तब कहता है जब उसकी व्यावसायिक जड़े जम जाती है। इससे पूर्व बिना वेतन लिए कनक जैसी मजदूर उसे कहीं नहीं मिल सकती थी तब कनक से पुरुष जैसा काम लेने में उसे कोई आपत्ति नहीं हुई थी।

3.5 पितृसत्ता द्वारा प्रयुक्त शोषण के तरीके

मुल्क के बटवारे के बाद आम जनता ने अपने वतन से दूर नए बने देश में स्वयं को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने यहाँ नए रिश्ते बनाए, आजीविका के नए साधनों की खोज की जिससे नए आर्थिक संबंध निर्मित हुए। आर्थिक संबंधों के बदलाव के परिणाम स्वरूप नैतिक मूल्यों की जकड़न ढीली पड़ने लगी। मनुष्य के सामने जीवन रक्षा का प्रश्न ठोस था जिससे आदर्शों के अनुपालन की उपेक्षा होने लगी। आर्थिक विपन्नता और मानसिक तनाव

के दौर में लोगों ने (विशेषकर स्त्रियों ने) ईश्वर की प्रतिमाओं से हृदय के आघात को सह लेने का सहारा पाया । वहीं किसी को मूर्ति के कठोर पाषाण से भौतिक संसार में ईश्वर की अनुपयोगिता का संकेत मिला । ईश्वर के बंदों से छला गया इंसान ईश्वर से शांति की याचना करता रहा ।

नई भूमि में जमने के लिए सबसे ज्यादा संघर्ष आर्थिक रूप से विपन्न अशिक्षित वर्ग को करना पड़ा । उसमें भी इस वर्ग की स्त्रियों को जो अपने दुर्भाग्य से जिंदा बच आयी थी । आर्थिक और सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित वर्ग ने अपने परिवार को बड़े-बड़े नगरों में मकान खरीद कर स्थापित किया । संचित संपत्तियां जो बैंक में जमा थी, उसे विभाजन के उपरांत नए देश की नई बैंक की शाखा में मँगवा लिया गया । सरकार ने ज़मीन के बटवारे का नियम भी ऐसा बनाया जो आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्ग को ही लाभ पहुँचाने वाली थी । जो वर्ग पश्चिम पंजाब में गरीब था वह पूरब में भी गरीब ही रहा । अपनी ज़मीन के लिए वहीं लोग दावा कर सकते थे जो विभाजन रेखा के उस पार अपनी ज़मीन छोड़ आयें थें ।

जो लड़कियां विभाजन की हिंसा से बचा कर ले आयी गयी थी उनके पास अपनी संपत्ति जैसी कोई चीज नहीं थी । इन स्त्रियों को सबसे बड़ा आघात उस वक्त पहुंचा जब इनके पिता अथवा पति ने इन्हें अपनाने से इंकार कर दिया । कुछ ने अपने स्वजनों के यहाँ पहुँच कर पनाह देने की मिन्नतें की और कुछ ने औरों के संग हो रहे अन्याय से सीख लेकर चुप्पी साध ली । उपन्यास के दूसरे भाग 'देश का भविष्य' में बंती के साथ हुई दुर्घटना ने तारा को भीतर तक दहला दिया था । अपने साथ की स्त्रियों के संग हो रहे अन्याय व परिवार की अपने प्रति उपेक्षा के कारण तारा ने अपने परिवार को कभी खोजने का प्रयत्न नहीं किया । एक डर जो तारा के साथ निरंतर बना रहता था जिसके कारण भी तारा ने अपने परिवार के साथ कभी संपर्क स्थापित करने का प्रयास नहीं किया वह था परिवार के द्वारा उसे पुनः सोमराज जैसे क्रूर और हिंसक आदमी को पुनः सौंप दिया जाना । अपने साथ हुई मानसिक व शारीरिक हिंसा के बावजूद तारा ने खुद को स्थिर बनाए रखा । दिल्ली में उसके नए मानवीय संबंध बने । आर्थिक आत्मनिर्भरता ने उसके जीवन को बहुत सरल कर दिया था ।

भूख और प्यास की तड़प ने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति लोगों को सजग बनाया। विभाजन ने कम-ज्यादा सभी को प्रभावित किया। एक ही प्रकार के दुख से गुज़र रहे लोगों ने एक दूसरे को धैर्य धारण करने का हौसला दिया।

पुरी ने बदली हुई परिस्थिति में अपने लिए कई संभावनाओं की तलाश की। क्रांतिकारी आंदोलनों में शामिल होने के कारण उसने लाहौर में कई संपर्क बना लिए थे जिससे उसे नए शहर में बसने में उतनी कठिनाई नहीं हुई। उसने स्वयं को पत्रकार के रूप में जमाना शुरू किया। मजदूरों के अधिकारों के लिए लिखने वाला पुरी स्वयं मजदूरों से अधिक से अधिक काम करवा कर ज्यादा मुनाफा कमा सकने की ताक में रहने लगा। निम्नमध्यवर्ग का पुरी आर्थिक अवस्था बदलने पर स्वयं शोषकों की भूमिका में आ गया। भूख के प्रश्न ने उसकी सारी रोमानीयत को परे धकेल दिया था। आर्थिक स्थिति स्थिर होने पर उसे पत्नी के रूप में कनक की कमी महसूस होने लगती है। कनक के समागम की स्मृति उसे विचलित करने लगती है।

समाज में स्वयं को स्थापित करना पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए अधिक कठिन होता है। पुरुषों का बाहर की दुनिया से रोज़ का संबंध रहता है। सभी जगहें उनके लिए परिचित होती है। जगह के अनजान होने पर भी उन्हें खो जाने अथवा कुछ अनिष्ट हो जाने का भय नहीं सताता। बाहरी दुनिया से निरंतर संपर्क में रहने के कारण उनके कई परिचित बनते है जैसा कि पुरी के साथ होता है। क्रांतिकारी आंदोलनों के साथी विश्वनाथ सूद के संपर्क से पुरी जालंधर से एम०एल० ए० बनता है। पुरुषों के लिए समय व स्थान की कोई पाबंदी नहीं होती। वे अपनी इच्छा से किसी भी व्यवसाय का चुनाव कर सकते हैं। समाज से प्राप्त यह आज़ादी उनके जीवन को कई मायनों में आसान कर देती है। अपनी सीमाओं में दबी तारा नौकरी न मिलने के कारण सड़क पर सामान बेचने वाले शरणार्थी लड़कों को देखकर मन ही मन सोचती है –

“बरामदों में विशाल खंभों के साथ फर्श पर कुछ लड़कों ने छोटी-छोटी दुकानें फैला रक्खी थीं। कोई बक्सुए-बटन बेच रहा था कोई बिंदी-फीते, कोई गोली-टाफी। तारा पहचान रही

थी, बन्ती के गाँव के लड़के साधूराम की तरह यह भी शरणार्थी लड़के ही थे। लड़के कुछ भी कर सकते हैं परंतु वह तो लड़की थी।" [50]

यशपाल के अनुसार शक्ति के विभिन्न रूपों में पैसा एक सशक्त रूप है। यह शक्ति समाज में पुरुषों के हाथ में हैं। इस शक्ति के माध्यम से एक पुरुष दूसरे पुरुष की सहायता करने में सक्षम है। अपने सामर्थ्य के अनुसार पुरुष किसी भी कार्य के चुनाव के लिए मुक्त है। ये विकल्प स्त्रियों के लिए उपलब्ध नहीं थे। यह उपन्यास 1958 में प्रकाशित हुआ है। तब की परिस्थिति और आज की परिस्थिति में अंतर है लेकिन कुछ चीजें आज भी उसी सघनता के साथ समाज में मौजूद है। स्त्री की आर्थिक स्थिति का निर्धारण पिता या पति की आर्थिक स्थिति से होता है। स्त्री को अपने कार्य करने के क्षेत्र का चुनाव अपने पिता या पति के कुल को ध्यान में रख कर करना पड़ता है। यदि इस कारण को गौण समझा जाए तो भी समाज में कई ऐसे कारण मौजूद है जो स्त्री के कार्य करने की दिशा का निर्धारण करते हैं उसमें एक कारण जो प्रत्येक परिवार में सलाह के रूप में दिया जाता है वह है बुरे लड़कों का खौफ। आत्मनिर्भर बनने की कोशिश करने पर कनक को ऐसी सलाह कई जगह से दी जाती है। कशिश जी कनक को अपनी बेटी जैसा समझ कर उसकी परवाह करते हुए जो सलाह देते हैं वह इस प्रकार है –

"तुम मेरी भी बेटी ही हो। सच कहता हूं, पत्रों के दफ्तर शरीफ़जादियों के लिए मुनासिब जगह नहीं है। अपने आदरणीय भाई की बेटी को मैं उसके लिए कभी उत्साहित नहीं करूँगा। सब जवान मर्दों में एक लड़की का बैठना क्या उचित होगा ? इन दफ्तरों में बहुत लूज टाक, इंडीसेंट जोक्स (अनर्गल प्रलाप और अभद्र परिहास) चलते हैं। नाट फिट फॉर ए रिस्पेक्टेबल गर्ल ! मेरी तो सलाह है, तुम किसी गर्ल्स स्कूल में या स्त्रियों में दूसरा सामाजिक काम करो।" [51]

---

[50] झूठा सच (देश का भविष्य), लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2016, पृ. 121
[51] वही, पृ. 56

जवान मर्दों के बीच बैठकर एक लड़की का काम करना उचित नहीं है क्योंकि मर्दों के बीच लूज टॉक किये जाते हैं। उनके इस प्रकार के लूज टॉक में कोई विघ्न न पड़ जाए इसका पूरा ध्यान रखा जाना आवश्यक है। पत्रों के दफ्तरों में कार्य करने के लिए बौद्धिक क्षमता व तार्किकता की आवश्यकता होती है जिसे करने में स्त्रियां भी उतनी ही सक्षम है जितने कि पुरुष लेकिन एक विशेष क्षेत्र में (अध्यापिका, नर्स) बांध दिए जाने के कारण स्त्रियों की क्षमताओं का विकास बाधित होता है। स्त्रियों को असक्षम साबित किये जाने के कई फायदे हैं। इससे प्रतिस्पर्धा कम होती है, घर में बिना वेतन के नौकर की हर समय उपलब्धता रहती है, स्कूल आदि में स्त्रियों के नौकरी करने से आमदनी के साथ घर का कार्य भी सुचारु रूप से चलता रहता है।

उचित और अनुचित से परे एक बात जिसकी ओर ध्यान दिया जा सकता है वह है देश की राजनीति, अर्थनीति से स्त्रियों को हमेशा दूर रखना। लोकमत के निर्माण में स्त्रियों की भूमिका की उपेक्षा करना। राजनीति में अधिकतर वहीं महिलायें पहुँच सकी हैं जिनके पीछे उनके पिता या पति का मजबूत हाथ रहा है। वर्तमान में भी राजनीति व अर्थनीति की निर्णयकारी शक्तियां स्त्रियों के पास नहीं है। पुरुषों द्वारा पुरुषों का भय दिखाकर स्त्रियों की संचालन की शक्ति को कुचल दिया जाता है। इसके लिए भारी-भारी शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे रिस्पेक्टेबल गर्ल। इसके बाद लड़की स्वयं ही सोचने को मजबूर हो जाएगी कि जिस कार्य का चुनाव वह कर रही है वह उसके लिए सही है या नहीं। डिसरिस्पेक्टेबल गर्ल हो जाने का भय उसे सताता रहेगा।

घर से बाहर निकल कर काम करना स्त्रियों के लिए चुनौतीपूर्ण होता है। इस जोखिम को सहने के लिए हर स्त्री तैयार नहीं होती। उन्हें घर की चारदीवारी ज्यादा सुरक्षित लगती है। कनक के साथ घटित एक घटना के प्रसंग में इस बात को समझा जा सकता है –

कनक को असीर का अधिकाधिक निस्संकोच होते जाना भी अच्छा नहीं लग रहा था। बार-बार इंकार कर देने पर भी सिगरेट आफर करने का आग्रह, जीना उतरते या चढ़ते समय

सहारा देने के लिये कमर पर हाथ रखने लगता। कनक को संकोच और गिलगिली-सी अनुभव होती थी जैसे छिपकली या मकड़ी शरीर को छू रही हो।[52]

ऐसी घटनाओं के द्वारा अथवा इनका डर दिखाकर स्त्रियों की उत्पादक क्षमता को शून्य किया जाता है। घर से बाहर निकल कर समाज में खुद को मिलाने के लिए कई स्तरों पर नई-नई चुनौतियाँ सामने आती है। ये चुनौतियाँ क्रियात्मक रूप में अपना काम करती है जो सभ्य व शिक्षित भाषा का व्यवहार करती है। प्रत्यक्ष विरोध जताने के लिए जिस आक्रोश का उपयोग किया जाता है वे यहाँ अपना दम तोड़ देती है। कई बार परिस्थितियां आत्म संदेह पैदा करती है, और समझ आने पर आत्म ग्लानि। आत्म संदेह और आत्म ग्लानि के बीच का समय निश्चित नहीं होता। कई बार जीवंत समय में ही उसकी निरंतर झलक दिखाई देती है मगर विरोध के उचित साधन के अभाव व आत्म संदेह की आदत मस्तिष्क में एक हलचल पैदा करती है जिसको ठोस रूप समय गुजर जाने के बाद मिलता है। मस्तिष्क के इस द्वन्द्व को भाषा देने का कार्य साहित्यकार विभिन्न घटनाओं के काल्पनिक दृश्यों के माध्यम से करता है। झूठा सच के दूसरे भाग में यह समस्या उन स्त्री पात्रों के समक्ष कई बार उपस्थित होती है जो स्वावलंबन के लिए प्रयासरत है। जिसके पास पूंजी के नाम पर अपनी शिक्षा है। कनक का एक प्रसंग निम्न है –

"तो लीजिए ! हमारे कहने से लीजिए न, अच्छा लगेगा।"सिन्हा ने कनक का घुटना छूकर आत्मीयता से आग्रह किया। .... "इतना सा ले भी लीजिए न ! हम कहते हैं, आखिर कितनी खुशामद कराइयेगा !"

सिन्हा ने कनक के घुटने पर पूरा हाथ दबा दिया।

मेज धक्के से हिल गयी। असीर का गिलास गिर पड़ा। कनक झटके से खड़ी हो गयी थी, माथे पर तेवर आ गये –" ह्वट इस दिस ! मुझे जाने दीजिए !" [53]

---

[52] वही, पृ. 64
[53] वही, पृ. 74

एक तरफ मस्तिष्क की उलझन, आर्थिक अभाव ऊपर से समाज के द्वारा दोषारोपण ये तीनों एक साथ स्त्री के जीवन में आते हैं । नैयर ने घटना के लिए कनक को ही दोष दिया उसने कनक को शराब पीने के लिए छिछोरा तक बताया । कनक ने अपनी सफाई में जो कहा उसे ध्यान देने की जरूरत है । नैयर के तर्क का सीधा संबंध समाज की उस सोच से है जिसमें पुरुषों के द्वारा कोई गलत काम नहीं किया जाता । गलत करना उनका प्राकृतिक स्वभाव होता है । ऐसा होता ही है इसलिए उस पर सवाल खड़ा नहीं किया जा सकता । जो नहीं होता है सवाल उस पर खड़ा किया जाना चाहिए जैसा नैयर ने किया । कनक को पुरुषों के साथ बैठ कर ड्रिंक नहीं करना चाहिए था । सवाल के दायरे में कनक ही होगी । जिस बात के लिए कनक तर्क करती है 'अनुचित व्यवहार' उसे मोटी बुद्धि के लिए समझना सरल नहीं होता ।

"अच्छा, मेरी गलती सही लेकिन मैंने अनुचित व्यवहार तो नहीं किया ।………………"

54

इसे यशपाल ने बहुत सरल ढंग से समझाया है । बिल्कुल इससे मिलता-जुलता प्रसंग तारा के संदर्भ में भी देखा जा सकता है । नौकरी के लिए सिफारिश करने की बात कह कर तारा को ले जाने वाले सत्तारूढ़ कॉंग्रेस पार्टी के एक प्रतिनिधि शख्स 'प्रसाद' के कारनामे को निम्न वार्तालाप में देखा जा सकता है –

"नहीं नहीं, तुम तख्त पर आराम से लेट कर रेस्ट करो । हम तो उधर ही काम करेंगे । तुम बेफिक्री से लेट जाओ ।"[55]

तारा ने अपने केशों पर स्पर्श अनुभव किया । आँखें खोल दीं और झटक कर कुर्सी

पर सीधी हो गयी ।

[54] वही, पृ. 77
[55] वही, पृ. 122

प्रसाद जी सोफा कुर्सी की चौड़ी बाँह पर बैठ कर तारा के केश सहलाते हुए मुस्करा रहे थे – “कुर्सी पर ही सो गयीं । तख्त पर नहीं लेटी ?” उन्होंने तारा के गाल पर थपथपा दिया ।

तारा प्रसाद जी का हाथ हटाकर खड़ी हो गयी – “मैं अब जाना चाहती हूँ । कैम्प में मुझे लिस्ट पूरी करनी हैं ।”

“अरे जल्दी क्या है, हम छोड़ आयेंगे । पन्द्रह-बीस मिनट में गाड़ी आ जायेगी, बैठो तो ।”......................

तारा फिर बैठी नहीं ।[56]

तारा को नौकरी की जगह की खोज के लिए लाने वाला व्यक्ति अपना दिन काटने का प्रयास करता है । अपने दफ्तर में ले जाकर उसे आराम करने के लिए कहता है, और कई दूसरी बातों में फसाये रखता है ।

स्त्रियों का पुरुषों के समक्ष बराबरी में बैठ कर कुछ ऐसा काम करना जिसमें ज्ञान की आवश्यकता है समाज के लिए अपच का विषय है । निम्न बातचीत पढ़े लिखे युवकों के बीच हो रही है जो शरणार्थी कैम्प में अभागों की मदद करने आए हैं –

कोई स्वर को दबा कह रहा था-

‘भई विमल जी बड़े तेज हैं, झट कलम पकड़ा दिया ।

“और बोले कितनी अदा से, जी कलम चाहिए आपको ।”

---

[56] वही, पृ. 123

"भाई मॉडर्न है मॉडर्न। जोर की इंगलिश बोलती है। मजे ही मजे हैं विमल भाई के। परियों से घिरे रहते हैं।"[57]

वैसे तो मनुष्य द्वारा किया जाने वाला प्रत्येक कार्य उसकी बुद्धि से संचालित होता है मगर स्त्रियों व मजदूरों के द्वारा किए जाने वाले कार्य को ज्ञान की श्रेणी में नहीं समझा जाता। इन कार्यों को उनका धर्म समझा जाता है जिसके लिए प्रशंसा व मान्यता की आवश्यकता महसूस नहीं होती।

3.6 पितृसत्ता की भाषिक अभिव्यक्ति

पुरुषों के द्वारा भाषा के माध्यम से स्त्री के अंगों को लेकर मज़ाक करना बहुत आम बात है। एक पुरुष दूसरे पुरुष को नीचा दिखाने के लिए जिन गालियों का प्रयोग करता है उन सभी गालियों में स्त्री के अंगों को गालियां दी जाती है।

"पान में तम्बाकू नहीं लेते ?"अवस्थी जी ने चावला के अनाड़ीपन पर करुणामिश्रित विस्मय प्रकट किया, "तम्बाकू के बिना पान का क्या लुत्फ ? आप पान खाते हैं या पत्ते चरते हैं ? बिना तम्बाकू का पान तो ऐसा है जैसे बिना कूचों की नारी से ।"

श्रीवास्तव और शर्मा ने हाथ पर हाथ मार कर जोर से कहकहा लगा दिया –"वाह, वाह ! क्या कहा भैया जी ने ! लाख रुपये की बात कह दी।"[58]

इस तरह के भद्दे मज़ाक पुरुषों के मध्य एकांत में नहीं बल्कि दो स्त्रियों के बीच किए जा रहे हैं। पुरुषों को यह ज्ञात है कि वहाँ उपस्थित कोई भी स्त्री इसका विरोध करने की अवस्था में नहीं है। अपनी कृपा को उन स्त्रियों के लिए अनिवार्य समझने की सोच सत्ता में बैठे पुरुष की इसलिए बन जाती है क्योंकि औरत को आर्थिक या राजनीतिक क्षेत्र में जगह बनाने के लिए उनकी कृपा दृष्टि से होकर गुजरना होता है। इसका कारण यह है कि

[57] वही, पृ. 111
[58] वही, पृ. 192

विश्व या देश में अर्थनीति, राजनीति सभी पुरुषों की मुट्ठी में ही बंद है। उनसे मतभेद की भरपाई स्त्रियों को बहुत महंगी पड़ सकती है। विरोध न कर पाने की अवस्था में कुछ आजीवन समझौता किए बैठ जाती है और इस प्रकार के भद्दे विनोद में संकोच से भरी मुस्कान बिखेरती है। ऐसी स्त्रियों में परिस्थिति से जूझने की क्षमता के विवेक व साहस का अभाव होता है, जो आत्म क्षमता के ज्ञान से आता है और वह कनक में दिखाई देता है। इसलिए उसे संकोच के साथ गुस्सा भी आता है।

इस प्रकार की स्थिति में स्त्रियों के चुप रहने के कारण को तारा के कथन से समझा जा सकता है –

“स्त्रियों का भाग्य पुरुषों की प्रसन्नता और उनके निर्णय पर ही निर्भर है।.......नौकरी कैसे मिले ?”[59]

किसी-किसी जगह पर यशपाल ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो उस स्थिति के बिल्कुल अनुकूल नहीं है। शेखुपुरा में बंद स्त्रियों की अवस्था दयनीय थी। वे सभी एक-दूसरे से अपने पर बीती घटनाओं का वर्णन करती हुई किस्मत को दोष देती है। ऐसे माहौल में यशपाल दुर्गा नामक पात्र के लिए जो कहते हैं वह देखने योग्य है -

‘कंधों पर कुरता या सलूका न होने के कारण वह दाहिना हाथ बाये कंधे पर और बायाँ हाथ दाहिने कंधे पर रखे सीने को बाँहों से ढँके रहती थी। इस कष्ट में भी उसकी छातियाँ म्यूजियम में रखी हुई संगमरमर की मूर्ति की तरह सुडौल थीं।’[60]

एक और भी जगह पर जहां स्त्रियों को नंगा कर जुलूस निकाला जाता है उसके नग्न शरीर को छिले हुए संतरे की उपमा देना फूहड़ लगता है। उस शर्मनाक स्थिति में भी लेखक को सौन्दर्य की उपमाएं याद आती है।

---

[59] वही, पृ. 117

[60] पृ. 394

चरित्र खण्डन या पर पुरुष गमन भारतीय समाज में घोर अपराध की श्रेणी में आता है जो अच्छा खासा चर्चा का विषय भी है। स्त्री चरित्र का खण्डन और भी शर्मनाक बात है। महिलायें आपसी झगड़ों में आमतौर पर उसके चरित्र को गालियां दिया करती है अथवा असहाय (पति के मर जाने की) हो जाने की। पति की मृत्यु के पश्चात औरत की सामाजिक आर्थिक स्थिति क्या रह जाती है इसे सभी औरते जानती है। निहालदेई तारा के लिए जिस गाली का प्रयोग करती है वह सीधे उसकी योनि की सुचिता से जुड़ा है –

निहालदेई और भी जल उठी। झोंपड़ी से निकलती तारा को धमकाने लगी – "जा-जा, अपने खसमों से हमारी चुगली कर दे।………………मैं भी सारा कम्प इकट्ठा करके पंचायत कराऊँगी। कम्प में छिनालों[61] का क्या काम ?........"[62]

पुरुषों में भी परस्त्रीगमन एक अपराध है लेकिन वह इतने महत्व की चीज नहीं है कि आपसी झगड़ों में उसके चरित्र को खंडित किया जाए। अप्रत्यक्ष रूप से इसे पुरुष के गुणों में गिना जाता है। तमाम उच्च शिक्षा व वैज्ञानिक विचारधारा के उपरान्त भी पुरुष लेखकों में मेल गेज़िंग की समस्या पायी जाती है।

---

13 छिनाल शब्द बना है संस्कृत के छिन्न से जिसका मतलब विभक्त , कटा हुआ, फाड़ा हुआ, खंडित , टूटा हुआ , नष्ट किया हुआ आदि है। गौर करें चरित्र के संदर्भ में इस शब्द के अर्थ पर । जिसका चरित्र खंडित हो, नष्ट हो चुका हो अर्थात चरित्रहीन हो तो उसे क्या कहेंगे ? जाहिर है बात कुछ यूं पैदा हुई होगी- छिन्न नार +> छिन्नार> छिनार> छिनाल। जॉन प्लैट्स के हिन्दुस्तानीउर्दू कोश-इंग्लिश- में इसका विकासक्रम कुछ यूं बताया हैनारी + छिन्ना- > छिन्नाली> छिनाल। इसी तरह हिन्दी शब्दसागर में उसकी व्युत्पत्ति बताते हुए इसके प्राकृत रूप नारी से+छिन्ना- छिणणालिआ> छिणणाली > छिनारि के क्रम में इसका विकासक्रम छिनाल बताया गया है। परस्त्रीगामी और लम्पट के लिए हिन्दी में छिनाल का पुरुषवाची शब्द भी पनपा है छिनरा।

http://shabdavali.blogspot.com/2010/08/blog-post_06.html

[62] वही, पृ. 125

निष्कर्ष

'झूठा सच' उपन्यास अपने विस्तृत फलक वह गहरी आलोचनात्मक दृष्टि के लिए विभाजन की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यासों में अपनी एक अलग पहचान रखता है। इस उपन्यास ने विभाजन के कई आयामों को स्पर्श किया है। विभाजन के जिन कारणों को काल्पनिक घटनाओं के माध्यम से यहाँ प्रस्तुत किया गया है उनमें सबसे महत्वपूर्ण कारण आर्थिक है। विभाजन के पूर्व व पश्चात बदलती स्त्री छवि को भी दिशा देने में आर्थिक कारण एक महत्वपूर्ण कारण है। यशपाल ने 'झूठा सच' के साथ ही अपनी अन्य कहानियों व उपन्यासों में स्त्री की जो छवि रची है वह एक आधुनिक नारी की छवि है जो अपने कर्तव्यों के साथ ही अपने अधिकारों के प्रति भी जिम्मेदार है। वह तमाम कठिनाइयाँ जो भारतीय समाज में एक स्त्री के समक्ष आती है उनसे ये सहज ही नहीं निकल पाती मगर निकलने की छटपटाहट इनमें खूब है। तमाम वैचारिक विरोध और बौद्धिक स्तर में अंतर के बावजूद यशपाल ने स्त्री और पुरुष को एक दूसरे का पूरक बनाया है। इनकी रचनाओं में संबंध टूटते अवश्य है मगर अकेले हो जाने के लिए नहीं बल्कि जीवन को एक नवीन अवसर देने के लिए। इनकी स्त्री पात्रों में मौन व आक्रोश के मध्य का विरोध है। यशपाल ने चालाक पुरुषों की मनोवृत्ति के साथ ही भले पुरुषों का चित्रण भी उपन्यास में किया है। जो जीवन दृष्टि वे पाठकों के समक्ष रखते हैं वह स्त्री और पुरुष के मिलन से ही अपनी पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

उपसंहार

हिंदी साहित्य के इतिहास में जिन चंद उपन्यासों को महकाव्यात्मक उपन्यास का दर्जा प्राप्त है, यशपाल रचित 'झूठा सच' उनमें एक है । भारत विभाजन की त्रासदी पर आधारित जिन उपन्यासों का ज़िक्र हुआ करता है उनमें विवरण और फलक की दृष्टि से संभवतः 'झूठा सच' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । कवि कुँवर नारायण ने इस उपन्यास में 'कवित्व का अभाव' पाया था, पर यह कृति पाठक के मन पर जितना गहरा त्रासद प्रभाव छोड़ती है वह कवित्व के बगैर शायद असंभव है ।

'झूठा सच' का अध्ययन करते समय जो बात सबसे महत्वपूर्ण लगती है वह है वभाजन की त्रासदी जिसका विवेचन विश्लेषण अनेक विद्वानों ने सपनी शक्ति और सीमा में किया है । इस ग्रंथ पर आधारित जो शोधप्रबंध उपलब्ध हैं उनमें भी इसी मुद्दे को विश्लेषण का विषय बनाया गया है ।

इस लघु - शोधप्रबंध का मकसद पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य में 'झूठा सच' पर विचार करते हुए कुछ ऐसे अनदेखे-अजाने पहलुओं को प्रकाश में लाना रहा है जिन पर संभवतः पहले के शोधप्रबंधों और आलोचना ग्रंथों में विचार नहीं किया गया है ।

उपनिवेशवाद के विरुद्ध हुए राष्ट्रीय आंदोलनों में स्त्रियों ने भी अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की । गुलामी से निकलते देश की आम जनता ने विशेषकर स्त्रियों ने आज़ाद देश में अपने

लिए महत्वपूर्ण बदलाव की कल्पना की, जो आज़ादी के इतने वर्षों बाद तक प्रक्रिया में ही है ।

जिन समस्याओं के लिए ज़िम्मेदार किसी विशेष व्यवस्था को समझा गया था, वह भारत के विभिन्न धर्म, संस्कृति, मानसिकता सभी जगह उपस्थित थी अतः शोषण की बुनियादी कारणों को समझना और उसके विरुद्ध तर्क करना जरूरी था । यह कार्य यशपाल ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया । इस तरह पितृसत्ता के स्वरूप को पहचानने में यशपाल की भूमिका को रेखांकित करना एक आवश्यक अकादमिक दायित्व है ।

कहना न होगा कि भारत में अंग्रेजी राज द्वारा आधुनिकता के प्रचार-प्रसार के बावजूद स्त्रियों को बहुत लाभ नहीं हुआ । औद्योगिक विकास और श्रम के अवसरों ने एक सीमा तक स्त्रियों पर नकारात्मक प्रभाव ही डाला । दूसरे शब्दों में इतिहास की धारा में एकबार पिछड़ जाने के कारण स्त्री समुदाय की जो दुर्गति हुई उससे आज तक वे पूरी तरह उबर नहीं सकी हैं । ऐसे में जब हम स्त्री-पुरुष समानता या उनको मिले समान अधिकारों की बात करते हैं तो हमें स्त्रियों के मुद्दे पर उनको प्राप्त आजादी के संदर्भ में भी अवश्य विचार करना चाहिए । इस नजारिएं से सोचने पर तत्काल चार बिन्दु उभरकर सामने आते हैं –

1. पुरुष यौनिकता की तुलना में स्त्री यौनिकता पर नियंत्रण
2. स्त्रियों की आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भूमिकाएं (स्त्री-पुरुष के बीच श्रम विभाजन, स्त्रियों का संपत्ति पर अधिकार, राजनीतिक अधिकार, श्रम के लिए मिलने वाले पारिश्रमिक की दर, शिक्षा और रोजगार के अवसर)
3. समाज की सामूहिक सोच के निर्माण में स्त्रियों की सांस्कृतिक भूमिका पर विचार के साथ ही इस कार्य के लिए उन्हें शिक्षा की कैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई गई है ?

4. समाज में स्त्रियों के बारे में किस तरह की विचारधारात्मक निर्मितियाँ कार्य करती हैं ? तथा कला, साहित्य और दर्शन के अंतर्गत किस तरह की स्त्री छवि का अंकन किया जाता है ।

उपर्युक्त बिंदुओं के मद्दे नजर यदि हम आजादी के पहले के भारतीय उपमहाद्वीप और खासकर भारत और पाकिस्तान जैसे देशों की आधी आबादी पर विचार करें तो बहुत निराशा हाथ लगती है । इसकी वजह यह है कि विभाजन के पूर्व का ब्रिटिश भारत मूलतः एक सामन्ती समाज था । चाहे अवध हो या लाहौर या कराची – बड़े जमीदारों और ताल्लुकेदारों का राज ही कायम था । दुनिया का इतिहास इस बात की गवाही देता है कि सामन्ती समाज व्यवस्था कमोबेस पुरुष वर्चस्ववादी पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था हुआ करती है । समाज के ऊपरी तबके की स्त्रियों को भले ही कुछ छूट मिलती रही हो पर शेष स्त्री समुदाय पितृसत्तात्मकता की दमन भट्टी में दग्ध होने के लिए अभिशप्त था । इस क्रम में एक मुद्दा यह भी है कि, बकौल मार्क्स, शासक वर्ग के विचार ही शासक विचार होते हैं इसलिए स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश भारत में यदि अधिकांश महिलाओं की मानसिकता पूरूषों से मिलती-जुलती हो तो इसमें चकित होने वाली कोई बात नहीं है ।

कहना न होगा कि साम्प्रदायिकता भारतीय उपमहाद्वीप की संभवतः सबसे बड़ी समस्या रही है । भारत एक धर्मप्राण देश है और धार्मिक व्यक्ति या समुदाय को निहित स्वार्थ की राजनीति कट्टरता की ओर धकेलती है । डॉक्टर राम मनोहर लोहिया ने सही लिखा है कि राजनीति अल्पकालीन धर्म है और धर्म दीर्घकालीन राजनीति । कम से कम भारतीय उपमहाद्वीप की धार्मिक एवं राजनीतिक स्थिति को देखते हुए डॉक्टर लोहिया का यह कथन लगभग शत प्रतिशत सही प्रतीत होता है । सच तो यह है कि भारत विभाजन के अनेकानेक कारण थे केवल धार्मिक कारण नहीं । यह बात दुनिया के दूसरे भू-भागों पर भी लागू होती है । इन कारणों में आर्थिक कारण सामाजिक गतिकी को बहुत दूर तक प्रभावित करते हैं । जिन लोगों ने भारतीय उपमहाद्वीप के आर्थिक इतिहास पर काम किया है उनमें से कई विद्वानों का मानना है कि ब्रिटिश भारत में संसाधनों पर मुट्ठी भर लोगों का कब्जा था और आम जनता

उनके अत्याचारों का बुरी तरह शिकार हो रही थी । आज के पाकिस्तान में एक लोकोक्ति बहुत प्रचलित है – नतथा सिंह एण्ड प्रेम सिंह बोथ आर दा सेम सिंह तात्पर्य यह कि चाहे कोई वर्चस्व प्राप्त सिक्ख हो या हिन्दू दोनों का रवैया दूसरे धर्मानुयायियों के प्रति लगभग समान था । मौजूदा पाकिस्तान के मुख्य-मुख्य महानगरों में ज्यादातर कारोबार करने वाले बड़े लोग हिन्दू, सिन्धी और सिक्ख थे जो स्वभावतः अपने कर्मियों के साथ वैसा व्यवहार नहीं करते थे जैसा किया जाना चाहिए था । 'इण्डिया आफ्टर गांधी' के लेखक एवं प्रसिद्ध विचारक रामचन्द्र गुहा ने भी प्रकारांतर से उपर्युक्त बिंदुओं को रेखांकित किया है ।

कुल मिलकर कहना यह है कि भारत विभाजन की त्रासदी को कथाकार यशपाल ने बहुत हद तक संपूर्णता में रूपायित करने में सफलता हासिल की है । दूसरे शब्दों में 'झूठा सच' भारत विभाजन का दस्तावेजीकरण नहीं, बल्कि अपने आप में एक स्मारक कृति है । यह उपन्यास अतीत पर आधारित होने के बावजूद एक भविष्योन्मुखी उपन्यास है जो हमें अतीत से सबक लेकर अपना भविष्य सुधारने की प्रेरणा देता है ।

संदर्भ सूची

आधार ग्रंथ

- यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), 2010, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2016
- यशपाल, झूठा सच (देश का भविष्य), 2010, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2016

सहायक ग्रंथ

अंग्रेजी की पुस्तकें

1. Kamla Bhasin ,What is Patriarchy?, Kali for Women, 1993
2. Kamla Bhasin, Understanding Gender, Women Unlimited (an associate of Kali for Women), 2003

हिंदी की पुस्तकें

1. सिंहावलोकन भाग 1, यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 14, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
2. सिंहावलोकन भाग 2, यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 14, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
3. सिंहावलोकन भाग 3, यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 14, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
4. दादा कॉमरेड, यशपाल , यशपाल रचनावली, खंड 1, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
5. झूठा सच (वतन और देश), यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 3, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
6. झूठा सच (देश का भविष्य), यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 4, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
7. बारह घंटे, यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 5 , लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
8. अमिता, यशपाल, रचनावली, खंड 2, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
9. दिव्या, यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 2, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
10. श्रीमती मीना आनन्द, संपादिका, मैं क्यों लिखता हूं ? यशपाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संशोधित संस्करण
11. तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, उन्नीसवाँ संस्करण, 2008
12. राजेन्द्र यादव, गुलामी का आनंद और स्वतंत्रता के खतरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998

13.राजेन्द्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, चौथा संस्करण, 2015

14.प्रमोद रंजन, जातिव्यवस्था और पितृसत्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020

15.रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने – विमर्श भाग, शिल्पायन, दिल्ली, 2010

16.महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016

17.भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2017

18.देवदत्त पटनायक, भारत में देवी, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2017

19.यशपाल, गांधीवाद की शव परीक्षा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998

20.रामचन्द्र गुहा,भारत गांधी के बाद, अनुवाद, सुशांत झा, पेंगुइन प्रकाशन

21.प्रकाशवती पाल, लाहौर से लखनऊ तक, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण, 2019

22. वीरेंद्र यादव, उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, प्रथम छात्र संस्करण, 2017

23.शंभुनाथ, हिंदी उपन्यास राष्ट्र और हाशिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016

24. ई० एच० कार, इतिहास क्या है,

25.मार्क्सवाद, यशपाल, यशपाल रचनावली, खंड 11, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

पत्रिकाएं

ई० पी०जी० पाठशाला से संग्रहीत सामग्री

Patriarchy and Matriarchy

Principal theories of patriarchy

लेख

- Placing Women in History: Definition and Challenges ~ Gerda Lerner
- Bahina Bai : Wife and Saint ~ Anne Feldhaus

  Understanding patriarchy, Past and Present: Critical reflection on Gerda Learner 1987, The Creation of Patriarchy, Oxford University Press ~ Geetanjali Gangoli (Ph.D UNIVERSITY OF BRISTOL)
- A Study of the Queer Movement in India By Arushi Chopra, Sociology Group
- Conceptualising Brahmanical Patriarchy in early India, Uma Chakravarti
- बीच बहस में - नारिवाद की भारतीयता : आयाम, अस्मिता और अंतरंगता, पृ. 91 प्रतिमान
- गरिमा श्रीवास्तव, क्रोएशिया यात्रा डायरी : देह में देश, प्रतिमान, पृ. 316

यूट्यूब से संग्रहीत सामग्री

- https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_matrilineal_or_matrilocal_soc

  ieties

- https://www.storytrails.in/blog/the-l....
- https://theswaddle.com/podcast/g-arun...

पी०डी०एफ०

- https://ncert.nic.in/textbook/pdf/lhhs103.pdf
- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/46297/1/Unit-2.pdf
- https://journals.library.brandeis.edu/index.php/caste/article/view/54/10

विकिपीडिया से संग्रहीत सामग्री

- https://en.wikipedia.org/wiki/Violence_against_women_during_the_partition_of_India#cite_note-D'Costa2016-34